काव्य-कानन

श्री० पं० लक्ष्मीधर शास्त्री

काव्य-कानन

(प्राचीन एवं अर्वाचीन चुनी हुई
कविताओं का संग्रह)

सम्पादक—
महामहोपाध्याय
श्री पं० लक्ष्मीधर शास्त्री
एम .ए., एम. ओ. एल,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

प्रकाशक—
मोतीलाल बनारसीदास
हिन्दी-संस्कृत पुस्तक विक्रेता
सैदामिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

सन् १९३८

मूल्य

प्रकाशक—
सुन्दरलाल जैन
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

सर्व प्रकार की पुस्तकें हमारी शाखा से मिल सकती हैं:—
मोतीलाल बनारसीदास
संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता—बांकीपुर-पटना

मुद्रक—
शान्तिलाल जैन
मुम्बई संस्कृत प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

विषय-सूची

उपकथन

यह छोटा सा पद्य संग्रह पाठकों के सामने उपस्थित है। इसकी उपादेयता के संबन्ध में कुछ कहना हमारा कर्तव्य नहीं है। इसके पन्ने उलटने पर पाठक स्वयं जान लेंगे कि इस प्रस्तुत प्रयास में साधारण योग्यता के विद्यार्थियों की सुविधा का विशेष ध्यान रखा गया है। यथासंभव अस्पष्टता तथा क्लिष्टता का परित्याग किया गया है। काव्य के विविध युगों के प्रतिनिधियों, विविध धाराओं के प्रवर्तक कवियों की केवल उन्हीं कृतियों का संकलन किया गया है जो भाषा तथा भाव दोनों की दृष्टि से नितान्त सरल तथा सरस हों। जिन साहित्यकों की रचनाएं साधारण हैं, तथा जो साधारण छात्रों की योग्यता के बाहर हैं, उनको इसमें स्थान नहीं दिया गया।

और भी—अप्रौढ तथा सुकोमल अवस्था के विद्यार्थियों के हाथ कोरी आशयहीन शृङ्गार प्रधान कविताएं देने से जो उनके हितों की हानि होती है, इससे भी सभी शिक्षक परिचित हैं। इस अवस्था में विद्यार्थियों को किसी ऐसे उपकरण की आवश्यकता होती है जो उनके स्वस्थ मानसिक

विकास तथा चरित्र-गठन में सहायक हो। इसी आशय से साहित्य की दृष्टि से उत्कृष्ट पर शृङ्गारिक रचनाओं का इस संकलन में समावेश नहीं किया गया है। इन सीमाओं से बाधित हो कर हमें कुछेक कवियों की अत्युत्तम रचनाओं को भी अपनी इच्छाओं के प्रतिकूल छोड़ना पड़ा है।

हिंदी साहित्य की प्रारंभिक अवस्था में वीर-गाथाओं की अधिकता थी। इस युग में वीर रस का अच्छा विकास हुआ था। चन्दवरदाई तथा जगनिक आदि इस युग के प्रसिद्ध कवि हुए हैं। किन्तु इस युग की भाषा के बहुत अव्यवस्थित होने के कारण उनकी कृतियों का यहां परिचय नहीं दिया गया है। हिन्दी काव्य में दूसरा युग भक्ति का है। इस में निर्गुण तथा सगुण दो प्रकार की धाराएं दृष्टिगोचर होती हैं। निर्गुण भक्त कवियों में महात्मा कबीर का नाम सर्व-प्रथम है। इन्हों ने निर्भीकता से जाति भेद तथा धर्म के बाह्य आडम्बर की चोट लगाई। निर्गुण धारा के कुछेक कवि सूफ़ीमत से प्रभावित होकर सांसारिक प्रेम द्वारा दिव्य प्रेम की प्राप्ति में विश्वास रखते थे। इस पिछली उपधारा के प्रतिनिधि मलिक मुहम्मद जायसी कहे जा सकते हैं। सगुण धारा के कवियों में भी कुछेक राम-भक्त थे, अन्य कृष्ण-भक्त। राम के स्वरूप में भगवान की दिव्य सत्ता के अनुभव करने वाले कवियों में गोस्वामी तुलसी दास का नाम उल्लेखनीय है और कृष्ण-भक्त कवियों में सूर

तथा मीरा का। भक्ति की इस धारा का मुसलमान साहित्यिकों पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ा। रसखान, रहीम आदि इसके सबल प्रमाण हैं। कविवर रहीम के दोहे अत्यन्त नीति-पूर्ण तथा उपदेश-युक्त हैं।

हिन्दी कविता का तीसरा युग लक्षण-ग्रन्थों का युग है। इस काल की रचनाओं में काव्य के अङ्गों, रस अलंकार आदि का सुन्दर प्रतिपादन हुआ। कविता साधारणतया शृङ्गारमयी होती थी। बिहारी लाल इस युग के सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। भूषण ने इस युग में भी जातीय भावनाओं की आवेग-पूर्ण अभिव्यक्ति कर देश और जाति को जागृत करने का प्रयास किया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आधुनिक युग का प्रारंभ होता है। उन्होंने रीतिकालिक शृङ्गार के गड्डालिका-प्रवाह से कविता की रक्षा का बीड़ा उठाया। नायिका के नखशिख से हटा कर कवियों का ध्यान उन्होंने अन्य उत्तमोत्तम विषयों की ओर आकृष्ट किया। तब से प्रकृति सौन्दर्य, देश प्रेम, तथा समाज सुधार इत्यादि विषयों को काव्य में यथोचित स्थान मिलने लगा है।

श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि कवियों की कृतियों में प्रकृति-सौंदर्य के सूक्ष्म निरीक्षण का, नाथूराम शङ्कर, मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि

कवियों के काव्य में समाज सुधार तथा देश प्रेम की उग्र भावना का परिचय मिलता है।

खड़ी बोली का विकास भी भारतेन्दु के समय से शुरू हुआ। ब्रजभाषा में कविता होती अवश्य रही, पर खड़ी बोली का प्रभाव तथा क्षेत्र दिन प्रति-दिन बढ़ने लगा।

जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर तथा वियोगी हरि ने इस युग में अधिकार पूर्ण सफलता से ब्रज भाषा में कविता की है, पर भारतेन्दु के बाद ब्रज भाषा के ऐसे समर्थक बहुत नहीं हुए। नवीनतम काव्य की सब से अधिक विशेषता रहस्यवाद तथा छायावाद है। रहस्यवादी कवि अनन्त, अप्रत्यक्ष, अटल विश्वात्मा की सत्ता के साथ जीवात्मा का सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास करता है और छायावादी अपनी प्रतीक-विधायिनी-प्रतिभा से अपने मनोभावों को मूर्तिमान अनुभव कर उनका चित्रण करता है। इस धारा के कवियों ने तुक और प्राचीन छन्दयोजना को भी तिलाञ्जलि दे दी है और बहुधा ऐसे छन्दों में काव्य रचना की है कि जिनका छन्द शास्त्र में पता भी नहीं। इन कवियों की रचनाओं में कल्पना, वेदना तथा गम्भीरता के कारण प्रायः रचना में जटिलता तथा दुरूहता का अंश भी आजाता है। काव्य को भाषा तथा छन्द के बन्धनों से मोक्ष दिलाने वाले कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त, तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के नाम उल्लेखनीय है। ये कवि छायावाद

के मुख्य स्तम्भ हैं। रामकुमार वर्मा तथा जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' का इस धारा में विशेष स्थान है।

स्त्री कवियों में श्रीमती महादेवी वर्मा की कृतियों में रहस्यवाद तथा छायावाद का अच्छा परिचय मिलता है। माखनलाल चतुर्वेदी तथा सियारामशरण गुप्त भावना प्रधान कवि है। हरिकृष्ण प्रेमी के काव्य में दुःखों की अचलता और उससे उद्भूत निराशा की झलक मिलती है और उदयशङ्कर भट्ट की रचनाओं में इस दम्भ पूर्ण जगत् के प्रति घृणा का भाव !

इससे यह स्पष्ट ही है कि इस नवीनतम युग में काव्य की अनेक धाराएं प्रवाहित हो चली हैं। प्रस्तुत संकलन में प्राचीन काव्य के साथ साथ इन नवीन धाराओं के संचालक कवियों के काव्य का दिग्दर्शन कराने का प्रयास भी किया गया है। इसमें सफलता हुई है अथवा नहीं, इसका निर्णय पाठक स्वयं करेंगे।

छात्रों की सुविधा के लिये संग्रह के अन्त में एक विस्तृत शब्द कोष लगा दिया गया है।



कबीर दास

ये हिन्दी के सर्व-प्रथम रहस्य वादी कवि हुए हैं । इनकी कविता का प्रामाणिक वृत्तान्त नहीं मिलता । इनके जन्म, मरण, कुल, माता पिता आदि के विषय में विद्वानों में बहुत मत-भेद है । कबीर-पन्थी विद्वानों के मतानुसार इनका जन्म काशी में संवत् १४५५ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा को माना जाता है । दन्त-कथा है कि ये किसी ब्राह्मणी विधवा से उत्पन्न हुए थे और इनका पालन किसी मुसलमान कुल में हुआ था । बड़े होकर इन्होंने स्वामी रामानन्द की शिष्यता ग्रहण की थी । ये कुछ पढ़े-लिखे न थे किन्तु सत्सङ्ग द्वारा धर्म के गूढ़-तम तत्त्वों का इन्होंने विवेक-पूर्ण अध्ययन किया था । ये धर्म के बाहरी आडम्बरों से घृणा करते थे और जाति भेद बिलकुल नहीं मानते थे । ये सरल जीवन और अहिंसा के पक्षपाती और हिन्दू मुसलिम एकता के सबल समर्थक थे ।

इनकी कविता से इनके विचारों की मौलिकता तथा मार्मिक दार्शनिकता का परिचय मिलता है । इनकी भाषा अधिक परिष्कृत नहीं थी । इसमें कहीं कहीं व्याकरण तथा छन्द की अशुद्धियाँ भी दीख पड़ती हैं । ये सुख्यात महात्मा और सुधारक हुए हैं । इनका चलाया हुआ मत 'कबीर पंथ' के नाम से प्रसिद्ध है इनकी रचनाओं के संग्रह का नाम बीजक है ।



साखी

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥१॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरत लगी तहँ मोरि ॥२॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगा, ज्यों तारा परभात ॥३॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥४॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि कर, भये कबीर उदास ॥५॥
कबिरा गर्व न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥६॥

रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥७॥
आज कहे कल्ह भजूँगा, काल कहे फिर काल।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल ॥८॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥९॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१०॥
कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥ ११॥
पाँचों नौबत बाजती, होत छतीसों राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥१२॥
कहा चुनावै मेड़ियाँ, लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढ़े तीन हाथ, घना तो पौने चारि ॥१३॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदे मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, मैं रूदूँगी तोहिं ॥१४॥
यह तन काँचा कुम्भ है, लिये फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥१५॥
आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
एक सिंघासन चढ़ि चले, एक बँधे जंजीर ॥१६॥
आसपास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥१७॥

या दुनियाँ में आयके, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥१८॥
कबिरा आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥१९॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र की ठाट।
एक पड़ा जेहि गाड़ में, सबै जाहिं तेहि बाट ॥२०॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥२१॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहे, तन की नारी जाहिं ॥२२॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रुखड़े, ईंधन हो गये सब्ब ॥२३॥
माली आवत देखिकै, कलियाँ करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार ॥२४॥
हम जानैं थे खाहिंगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥२५॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२६॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले, निःकामी निज देव ॥२७॥
लागी लागी क्या करे, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार ह्वै जाय ॥२८॥

लागी लगन छुटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा? अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥२६॥
सोओं तो सुपने मिलै, जागो तो मन माहिं।
लोचन एता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥३०॥
ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग में रहैं, हरि को भूलैं नाहिं ॥३१॥
कबिरा हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥३२॥
हँसौ तो दुख ना बीसरै, रोवौं बल घटि जाय।
मनहीं माहिं बिसूरना, ज्यौं घुन काठहिं खाय ॥३३॥
हँस हँस केतन पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिउ मिलै, (तो) कौन दुहागिनि होय॥३४॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥३५॥
माँस गया पिञ्जर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मन्द हमारे भाग ॥३६॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अङ्ग।
पीर सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग ॥३७
बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचे और धुँधुआय।
छूटि पड़ौं या विरह सों, जो सिगरो जरि जाय ॥३८॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नहीं, धुवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥३९॥

जो जन बिरही नाम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं विदेह ॥४०॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥४१॥
आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥४२॥
कबिरा बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माँहि ॥४३॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई, भला करेगा सोय ॥४४॥
सीस उतारै भुइँ धरै, तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥४५॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥४६॥
छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञ्जर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥४७॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥४८॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥४९॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥५१॥

शब्दावली

(१)

काया बौरी, चलत प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥

काया पाय बहुत सुख कीन्हों नित उठि मलि-मलि धोई।
सो तन छिआ छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई॥
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर संग न होई।
तोहिं अस मित्र बहुत हम त्यागा सङ्ग न लीन्हा कोई॥
ऊसर खेत के कुसा मँगावै, चाँचर चवर कै पानी।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी॥
सब सनकादि आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई।
जो जो जन्म लियो बसुधा में थिर न रह्यो है कोई॥
पाप पुन्य हैं जन्म सँघाती समुझि देख नर लोई।
कहत कबीरा अन्तर की गति, जानत बिरला कोई॥

(२)

भज ले सिरजनहार सुघर तन पाय के॥ टेक॥

काहे रहौ अचेत कहाँ यह औसर पै हौ।
फिर नहिं ऐसी देह बहुरि पाछै पछितैहौ॥
लख चौरासी जानि में, मानुष जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाहीं, कहा रंक कहा भूप ॥सुघर०॥
गर्भ वास में रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोहीं।
निस दिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढ़ौ मोहिं॥

चरनन ध्यान लगाई के, रहौं नाम लौ लाय।
तनिक न तोहिं बिसारिहौं, यह तन रहे कि जाय॥
इतना कियो करार काढ़ि गुरु बाहर कीना।
भूलि गयौ यह बात भयौ माया आधीना॥
भूली बातें उद्र की, आन पड़ी सुधि एत।
बारह बरस बीतिगे या बिधि, खेलत फिरत अचेत॥
बिषया बान समान देह जोबन मदमाती।
चलत निहारत छाँह तमक के बोलत बाती।
चोवा चन्दन लाइके, पहिरे बसन रँगाय।
गलियाँ गलियाँ झाँकी मारै, पर तिरिया लख मुसकाय।
तरुनायन गई बीत बुढ़ापा आनि तुलाने।
काँपन लागे सीस चलत दोउ चरन पिराने॥
नैन नासिका चूवन लागे, मुख तें आवत बास।
कफ पित कंठै घेर लियो है, छुटि गई घर की आस॥
मातु पिता सुत नारि कहौ काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ, काम धाम सब ही छुटि जाई॥
आखिर काल घसीटि है, पड़ि हौ जम कै फन्द।
बिन सतगुरु नहि बाँचि हौ, समुझ देख मति मन्द॥
सुफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजै।
मुक्ती मारग जानि चरन सतगुर चित दीजै॥
नाम गहौ निरभय रहौ, तनिक न व्यापै पीर।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर॥

(३)

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोई सूर नाहीं।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना, मँडा घमसान तँह खेत माहीं
सील औ सच संतोष साही भये, नाम समसीर तँह खूब बाजै।
कहै कब्बीर कोई जूझि हैं सूरमा, कायराँ भीड़ तँह तुरत भाजै।

(४)

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगत का भरमना छोड़दे बालके, आयजा भेख भगवंत पाहीं॥
भेष भगवंत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै।
काम दल जीति के कँवल दल सोधिके, ब्रह्म को बेधिके क्रोध मारै॥
पदम आसन करै, पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै॥



तुलसी दास

कवि शिरोमणि तुलसीदास का जन्म संवत् १५८६ में हुआ था। इनकी माता का नाम हुलसी तथा पिता का नाम आत्माराम था। कहा जाता है कि मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता पिता ने इन्हें पैदा होते ही त्याग दिया था। इनके जीवन में अद्भुत आक्रान्ति पैदा करने वाली घटना इनकी स्त्री रत्नावली की फटकार है। ये अपनी स्त्री से बड़ा प्रेम करते थे, एक बार वह इनके बिना पूछे अपने पिता के घर चली गई, तो ये भी उसके पीछे सुसराल पहुँच गये। लज्जित होकर रत्नावली ने इन्हें यों फटकारा:—

लाज न आवत आपुको, दौर आए हु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, ता मैं जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मेंह, होतिन तौ भवभीति॥

स्त्री के इन शब्दों ने गुसाईं जी के हृदय को सांसारिक सुखों से विरक्त कर दिया। प्रेम की धारा ने राम चरणों में दिशा बदली— स्त्री की ओर से हट कर वह भगवान् की ओर प्रवाहित हुई। तुलसी दास जी उच्च-कोटि के कवि हुए हैं। इनका 'राम चरित मानस' उत्तरीय भारत में सबसे अधिक लोक-प्रिय ग्रन्थ है। पर्णकुटीरों से लेकर

प्रासादों तक सर्वत्र इसका एक सा मान है। साहित्य तथा लोक-हित की दृष्टि से यह ग्रन्थ अद्वितीय है। इसका अनुवाद भारत की समस्त प्रमुख भाषाओं में हो चुका है। इसके अतिरिक्त गोसाईं जी के निम्न लिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली आदि आदि।



चौपाइयाँ

बन्दौं संत असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दारुन दुख देहीं ॥
पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता ।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
सुमति कुमति सब के उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी ।
सुनि मन मुदित करिय भल जानी ॥
उचित कि अनुचित किये विचारू ।
धर्म जाइ सिर पातक भारू ॥

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन॥

बिनु संतोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥
राम भजन बिन मिटहिं कि कामा।
थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ।
कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।
बिनु महि गंध कि पावक कोई॥
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा।
जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई।
जिमि बिनु तेज न रूप गोसाईं॥
निज सुख बिन मन होइ कि थीरा।
परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा।
बिनु हरि भजन कि भव-भय नासा॥

बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लह विश्राम॥

परद्रोही कि होइ निहसंका।
कामी पुनि कि रहइ निकलंका॥

भव कि परहिं परमातम विंदक।
सुखी कि होहिं कबहुँ पर निंदक॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने।
अघ कि रहइ हरि चरित बखाने॥
पावन जस कि पुन्य बिन होई।
बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
धन्य सो भूप नीति जो करई।
धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई॥
धन्य घरी सोई जब सतसंगा।
धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा॥
कवि कोविद गावहिं अस नीति।
खलसन कलह नहीं भल प्रीती॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं।
खल परिहरिय स्वान की नाईं॥
फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सत॥
वायस पालिय अति अनुरागा।
होइ निरामिष कबहुँ कि कागा॥
संत सहहिं दुख पर हित लागी।
पर दुख हेत असंत अभागी॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू॥

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥
खल सन इव परबंधन करई ।
खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई ।
रहइ न नीच मते चतुराई ॥
मुनि गन निकट विहँग मृग जाहीं ।
बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छी जाना ।
मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥
काटे पै कदली फरै, कोटि जतन करि सींच ।
विनय न मान खगेस सुनु डाँटे पै नव नीच ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं ।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू ।
सो तोहि मिलत न कछु संदेहू ॥
तृषित बारि बिन जो तन त्यागा ।
मुये करै का सुधा तड़ागा ॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने ।
समय चूकि पुनि का पछताने ॥
दुइ कि होइ इक संग भुवाला ।
हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फल चाखा॥
आरत कहहिं बिचारि न काउ।
सूझ जुआरिहिं आपन दाउ॥
जल पय सरिस विकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल।
विलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही॥
कसे कनक मनि पारिख पाये।
पुरुष पराखिये समय सुभाये॥
प्रभु अपने नीचहुँ आदरहीं।
अग्नि धूम गिरि तृन सिर धरहीं॥
सुनु जननी सोई सुत बड़ भागी।
जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोष निहारा।
दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
धन्य जन्म जगती तल तासू।
पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥
गुरु श्रुति सम्मत धर्म फल, पाइय बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेष॥

सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि ।
सो पछताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि ॥

सेवक सुख चह मान भिखारी ।
व्यसनी धन सुभ गति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह चारु गुमानी ।
नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा ।
हरिहिं समर्पे बिनु सत्कर्मा ॥
विद्या बिनु विवेक उपजाये ।
श्रम फल पढ़े किये अरु पाये ॥
संग ते यती कुमन्त्र तें राजा ।
मान तें ज्ञान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिन मद तें गुनी ।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई ।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
परहित बस जिनके मन माहीं ।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर, होइ वेग ही नास ॥

बरु भल बास नरक कर ताता ।
दुष्ट संग जनि देहिं विधाता ॥

कादर मन कर एक अधारा ।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती ।
सहज कृपिन सन सुन्दर नीति ॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी ।
अति लोभी सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहिं हरि-कथा ।
ऊसर बीज बये फल यथा ॥
कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा ।
अति दारिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोग बस संतत क्रोधी ।
बिष्णु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ॥
तन पोषक निन्दक अघखानी ।
जीवत शव सम चौदह प्रानी ॥
राकापति षोड़श उगहिं, तारागन समुदाय ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय ॥

राम सतसई

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होइ ।
तुलसी बिना उपासना, बिन दूलह की जोइ ॥ १ ॥
रामचरण अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस ।
चाहत बारिद बुंद गहि, तुलसी उड़न अकास ॥ २ ॥

स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर ॥ ३ ॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥ ४ ॥
सम्पति सकल जगत्त की, स्वासा सम नहिं होई।
सो स्वासा तजि राम पद, तुलसी अलग न खोइ ॥ ५ ॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को, गनिका परम प्रबीन ॥ ६ ॥
स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास ॥ ७ ॥
तुलसी सब छल छाँड़ि कै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह ॥ ८ ॥
कोटि बिघ्न सङ्कट बिकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै, जो सुदिष्ट रघुनाथ ॥ ९ ॥
लगन महूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥ १० ॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै याँचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर ॥ ११ ॥
होइ अधीन याँचै नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहि, को बारिद बिनु देइ ॥ १२ ॥
मान राखिबो माँगिबो, पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनों तब फबै, जब चातक मत लेहु ॥ १३ ॥

गंगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भरपूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर ॥ १४ ॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसी दास ॥ १५ ॥
राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाईं ते पौरिबो, धोखेहुँ बूड़ि न जाय ॥ १६ ॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिये, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है, स्वाँस सारसो तीर ॥ १७ ॥
असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त समागम राम-धन, तुलसी दुर्लभ दोइ ॥ १८ ॥
तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥ १९ ॥
तुलसी अपने राम कहँ, भजन करहु निरसङ्क।
आदि अन्त निर्वाहिबो, जैसे नव को अङ्क ॥ २० ॥
तुलसी राम सनेह करु, त्याग सकल उपचारु।
जैसे घटत न अङ्क नव, नव के लिखत पहारु ॥ २१ ॥
तुलसी संत सुअंबु तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत ॥ २२ ॥
गोधन गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवत सन्तोष मन, सब धन धूरि समान ॥ २३ ॥
काम क्रोध मद लोभ की, जौलों मन में खान।
तौलों पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥ २४ ॥

प्रेम बैर अरु पुण्य अघ, यश अपयश जय हान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥ २५ ॥
तौ लगि योगी जगत गुरु, जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥ २६ ॥
उरग तुरँग नारी नृपति, नर नीचो हाथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥ २७ ॥
दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, बिमुख भये पर और ॥ २८ ॥
सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावनु साँच।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरञ्जन पाँच ॥ २९ ॥
दीरघ रोगी दारिदी, कटु वच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जौ, तऊ त्यागिबे योग ॥ ३० ॥
बहुसुत बहुरुचि बहुबचन, बहु अचार व्यवहार।
इनको भलो मनाइबो, यह अज्ञान अपार ॥ ३१ ॥
सहि कुवास साँसति असम, पाप अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिं, ते वर सन्त सुजान ॥ ३२ ॥
तुलसी साथी विपत के, बिद्या बिनय बिबेक।
साहस सुकृत सत्य ब्रत, राम भरोसो एक ॥ ३३ ॥
राग रोष गुन दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज ॥ ३४ ॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहुँ राम नयपाल।
कुनय बालि रावण घरहिं, सुखद बन्धु किय काल ॥ ३५ ॥

तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मुये न मिटि हैं धोइ ॥ ३६ ॥
नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत, खैंचत चढ़त अकास ॥ ३७ ॥
राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार ॥ ३८ ॥
साहिब ते सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, नाँघि गये हनुमान ॥ ३९ ॥



सूरदास

कृष्ण-भक्त कवियों में महात्मा सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। इनका जन्म संवत् १५४० और मृत्यु लगभग १६३० में मानी जाती है। कुछ लोग इन्हें सारस्वत ब्राह्मण और अन्य लोग इन्हें चन्द वरदाई का वंशज और ब्रह्मभट्ट मानते हैं। इन्होंने अपने काव्यों में प्रकृति का, रूप रंग का, तथा मानव चेष्टाओं का जिस सूक्ष्मता से वर्णन किया है, उससे मालूम होता है कि ये जन्म से अन्धे नहीं थे। ये महाप्रभु श्री बल्लभाचार्य के सर्व-प्रधान शिष्य थे और उनमें अथाह भक्ति तथा श्रद्धा रखते थे। इनके पदों का संग्रह 'सूरसागर' के नाम से प्रसिद्ध है। सूरसागर में पद संख्या सवा लाख के लगभग मानी जाती है, पर अभी तक केवल ६ हज़ार के लगभग ही पद उपलब्ध हुए हैं।

इनकी कविता में सरसता, माधुर्य तथा संगीत का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। वात्सल्य, प्रेम, विरह, बाल-लीला आदि अनेक विषयों पर इन्हों ने बड़ी सफलता से काव्य-रचना की है। बाललीला का जितना स्वाभाविक तथा सुन्दर चित्र सूरदास में मिलता है वह अन्यत्र मिलना दुर्लभ नहीं तो कठिन अवश्य है। भगवद्भक्ति और प्रेम से सने हुए इनके पद भक्त-समाज में बड़े ही प्रेम से और श्रद्धा से अभिज्ञात हैं।

बिनय

अबिगत गति कछु कहति न आवै।
ज्यों गूँगौ मीठे फल कौ रस अन्तर्गत ही भावै॥
परम स्वादु सबहीं जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मम बानी कों अगम अगोचर सो जानै जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालंब मन चक्रत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं, तातें सूर सगुन-लीला-पद गावै

[२]

प्रभु, मेरे औगुन न बिचारौ।
धरि जिय लाज सरन आये की रबि-सुत-त्रास निबारौ॥
जो गिरिपति मसि घोरि उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोष लिखैं बसुधा भरि तऊ नहीं मिति नाथ॥
कपटी कुटिल कुचालि, कुदरसन अपराधी मतिहीन।
तुमहिं समान और नहीं दूजो जाहिं भजौं ह्वै दीन॥
जोग जग्य जप तप नहिं कीन्हौं, बेद बिमल नहिं भाख्यौ।
अति रस-लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं अनतै हीं मन राख्यौ॥

जिहिं-जिहिं जोनि फिरौं संकट बस, तिहिं तिहिं यहै कमायो।
काम-क्रोध-मद-लोभ-ग्रसित ह्वै विषै परम विष खायो॥
अखिल अनंत दयालु दयानिधि अघमोचन सुखरासि।
भजन-प्रताप नाहिंनै जान्यौं, बँध्यौ काल की फांसि॥
तुम सर्वग्य सबै बिधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र सूर बूड़त है, लीजै भुजा पसारि॥

[३]

कब तुम मोसों पतित उधारो।
पतितनि में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारो॥
बड़े पतित पासंगहुँ नाहीं, अजामिल कौन बिचारो।
भाजै नरक नाम सुनि मेरो, जमनि दियो हठि तारो।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, जिय जु करौ जनि गारो।
सूर, पतित कों ठौर कहूँ नहिं, है हरि-नाम सहारो॥

[४]

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै॥
कमलनैन कौ छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासौ दुर्मति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ क्यों करील-फल खावै।
सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

विरह

ऊधौ, अँखियाँ अति अनुरागी।
इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहुँ पलक न लागी॥
बिनु पावस पावस-रितु आई देखत हौ विदमान।
अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छाँड़हु नीरस ज्ञान॥
सुनु प्रिय सखा स्यामसुंदर के जानत सकल सुभाव।
जैसे मिलैं सूर प्रभु हमकों, सो कछु करहु उपाव॥

[२]

ऊधौ, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतौ सो गयौ स्याम-संग, को अवराधै ईस॥
सिथिल भईं सबहीं माधौ बिनु जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि जीवहिं कोटि बरीस॥
तुम तो सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस।
सूरदास, रसिक की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस॥

[३]

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप-रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तव ये तौ नहिं भूखी।
अब इन जोग सँदेसनि ऊधौ, अति अकुलानीं दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर, जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी॥

[४]

ऊधौ, मन माने की बात ।
दाख-छुहारो छाँड़ि अमृतफल, बिष-कीरा बिष खात ॥
जो चकोर कों देइ कपूर कोउ तजि अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरि काठ में, बँधत कमल के पात ॥
ज्यों पतंग हित जानि आपुनो दीपक सों लपटात ।
सूरदास, जाकौ जासों हित, सोई ताहि सुहात ॥



'मीरा'

भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त मीराबाई के जन्म-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मत भेद है। 'संत बानी' के सम्पादक के अनुसार इनका जन्म संवत् १५७३ में, तथा मृत्यु संवत् १६३० में हुई। कुछेक विद्वान् इनका जीवन-काल इससे ५० वर्ष पूर्व मानत हैं। ये जोधपुर मेढता के राठौर रत्नसिंह की पुत्री थीं। विवाह के कुछ दिन बाद ही ये विधवा हो गयी थीं। तब से इन्हों ने अपना सारा जविन भगवान् कृष्ण की आराधना में व्यतीत करने का निश्चय किया। साधु, महात्माओं की संगति का इन्हें बड़ा शौक था और ये उनके सेवा सम्मान में बड़ी श्रद्धा रखती थीं। इनके सुसराल वाले इनकी इस जीवनचर्या से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्हों ने कई बार गुप्त रूप से इनकी हत्या करने का प्रयत्न किया, किन्तु असफल रहे। अन्त में घर-वालों के नित्य के उपद्रव से तंग आकर इन्होंने घर त्याग वृन्दाबन की राह ली। वहां से फिर द्वारिका पुरी में चली गयीं और मृत्यु पर्यन्त वहीं रहीं। इन्हों ने कई ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से नरसी जी का मायरा, रागगोविन्द तथा राग सोरठ प्रसिद्ध हैं। इनके पद भक्ति-रस से सरावोर होते हैं, उनमें माधुर्य तथा वेदना की अभिव्यक्ति अत्यन्त मनोरम तथा हृदय-ग्राही होती है। ये भगवान् को प्रियतम अथवा पति के रूप में मानती थीं। प्रियतम के चरणों में आत्म-समर्पण की भावना का चित्रण इनके काव्य में प्रत्यक्ष है।

[१]

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै, कल न पड़त है आँखड़ियाँ॥
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, पड़ी बिरह की फाँसड़ियाँ।
अब तो बेगि दया कर साहिब, मैं हूँ तेरी दासड़ियाँ॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियाँ॥
लगी लगण छूटण की नाहीं, अब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, पूरौ मन की आसड़ियाँ॥

[२]

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन-दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

[३]

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल॥

अधर सुधा रस मुरली राजित, उर वैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल।

[४]

करम गति टारे नाहिं टरे।
सतबादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाँच पाँडु अरु कुन्ती द्रोपति, हाड़ हिमालय गरे।
जज्ञ किया बलि लेण इँद्रासन, सो पाताल धरे॥
'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, विष से अमृत करे॥

[५]

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार।
क्या जानूँ कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार॥
बढ़त पल-पल घटत छिन छिन, चलत न लागे बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहिं पुनि डार॥
भौ-सागर अति जोर कहिये, विषय ओखी धार।
सुरत का नर बाँधे बेड़ा, बेगि उतरे पार॥
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार।
'दास मीरा' लाल गिरिधर जीवना दिन चार॥



रहीम

कविवर रहीम का जन्म, संवत् १६१० तथा मृत्यु, संवत् १६८२ में हुई। ये सम्राट् अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री तथा दरबार के नवरत्नों में से थे। ये हिन्दी, संस्कृत, अरबी और फारसी के अच्छे विद्वान थे। ये स्वभाव के बड़े सरल, तथा दानशील थे। तुलसी दास जी की तरह इनकी कविता नीति और ज्ञान से परिपूर्ण है। भाषा की सरलता तथा भावों की उत्कृष्टता के कारण इनकी 'सतसई' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इन्होंने निम्न लिखित हिन्दी ग्रन्थों की रचना कीः—

बावैनायिकाभेद, श्रृंगार सोरठा, मदनाष्टक तथा रास पंचाध्यायी।



रहीम सतसई

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सब द्युति होय।
तनु सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय ॥ १ ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥ २ ॥

जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर।
निशि वासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ ३ ॥

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न सङ्गति होत ॥ ४ ॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटे बढ़े उनको कहा, घास बेंचि जे खात ॥ ५ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥ ६ ॥

को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात।
संपति के सब जात हैं, विपति सबहिं लै जात ॥ ७ ॥

जो रहीम होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ ।
तौ को धौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ ८ ॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं ।
जल में ज्यों छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥ ९ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय ।
उमड़ि चलै जल पार तें, जो रहीम बढ़ि जाय ॥ १० ॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह शाँति ।
उवत चन्द्र जिहि भाँति सो, अथवत वाही भाँति ॥ ११ ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानिए, छुटे आपनो ठौर ॥ १२ ॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत ।
बिपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥ १३ ॥

तब ही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम ।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥ १४ ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचिबे जोग ।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुवाँ खनावत लोग ॥ १५ ॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि ।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करे तरवारि ॥ १६ ॥

बड़ माया को दोष यह, जो कबहूँ घटि जाय ।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिये बलाय ॥ १७ ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय ।
जियत कंज तजि अंत बसि, कहा भौंर को भाय ॥ १८ ॥

दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि, सरबर को कोउ नाहिं ॥ १९ ॥
अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ २० ॥
रहिमन अत्ति न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥ २१ ॥
सरबर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥ २२ ॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥ २३ ॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो, गिरिवरधर गोपाल ॥ २४ ॥
दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिट कूदि काढ़ि जाहिं ॥ २५ ॥
जे रहीम विधि बड़ किए, को कहि दूषण काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥ २६ ॥
रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो, बावन आँगुर गात ॥ २७ ॥
ए रहीम घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारौ यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥ २८ ॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर की, डार दियो पुनि दूर ॥ २९ ॥

संतत संपति जानिके, सब को सब कुछ देइ।
दीनबन्धु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ॥ ३० ॥
समय दशा कुल देखि के, लोग करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान॥ ३१ ॥
सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं॥ ३२ ॥
धूर धरत नित शीश पर, कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥ ३३ ॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥ ३४ ॥
राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ॥ ३५ ॥

बिहारी

रीति काल के कवियों में बिहारी सर्व-श्रेष्ठ हैं। इन का जन्म, संवत् १६६० तथा मृत्यु, संवत् १७२० के लगभग मानी जाती है। ये जयपुर नरेश जयसिंह के दरबारी कवि थे। इनका काव्य ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' श्रृङ्गार रस का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। इस में कुछ दोहे नीति, भक्ति तथा वैराग्य के भी हैं। सतसई हिंदी जगत् में अत्यन्त लोक-प्रिय रही है। इस पर भिन्न २ प्रकार की तीस चालीस टीकाएं लिखी जा चुकी हैं। इस में ७१९ दोहे हैं। प्रत्येक दोहे में सुरीलापन तथा मार्मिकता भरी हुई है। साधारण सी बात को अत्यन्त मार्मिक तथा हृदय-ग्राही ढंग से कहने में बिहारी सिद्ध हस्त हैं

निस्सन्देह—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन को छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥



दोहे

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाँई परे, श्याम हरित द्युति होय ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होत ॥
कैसे छोटे नरन तें, सरत बड़नि के काम ।
मढ़ो दमामो जात है, कहिं चूहे के चाम ॥
जगत जनायो जिहिं सकल, सो हरि जान्यों नाहिं ।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँख न देखी जाहिं ॥
दुसह दुराज प्रजान में, क्यों न करै दुख द्वन्द ।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चन्द ॥
कहै यहै श्रुति सम्रृति हूँ, सबै स्याने लोग ।
तीन दबावत निकट ही, राजा पातक रोग ॥
सीतलताऽरु सुगन्ध की, महिमा घटी न मूर ।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥
बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाइ ।
घटत घटत पुनि ना घटै, वरु समूल कुम्हिलाई ॥

संगति सुमति न पावई, परे कुमति के धंध ।
राखो मेलि कपूर में, हींग न होय सुगंध ॥
बड़े न हूजैं गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥
दीरघ साँस न लेइ दुख, सुख साईं मति भूल ।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥
कहलाने एकत रहत, अहि, मयूर, मृग, बाघ ।
जगत तपोवन सों कियो, दीरघ दाघ निदाघ ॥
कोटि यतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहि बीच ।
नल बल जल ऊँचो चढ़ै, अन्त नीच को नीच ॥
को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ी यो भूल ।
दीने दइ गुलाब की, इन डारन ये फूल ॥
इहि आशा अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल ।
ह्वै है बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥
मरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समय के फेर ।
आदर दै दै बोलियुतु, वायस बलि की वेर ।
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल ॥



भूषण

वीर रस के सुविख्यात कवि भूषण संवत् १६७० के लगभग कानपुर के ज़िले में त्रिविक्रम पुर में पैदा हुए थे। ये चार भाई थे और चारों ही उच्च कोटि के कवि। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। ये अनेक राजाओं के आश्रय में रहे परन्तु अन्त में महाराजा शिवाजी के दरबार में इन्हें समुचित सम्मान प्राप्त हुआ। इनकी रचनाओं में शिवराज भूषण, शिबाबावनी और छत्रसाल-दसक ये तीन बहुत प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि इनके अतिरिक्त भी कवि ने 'भूषण उल्लास, दूषण उल्लास और भूषण हज़ारा' ग्रन्थों की रचना की थी, पर वे प्राप्य नहीं हैं।

भूषण की कविता अत्यन्त ओजपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक है। जातीयता की भावना इस में कूट-कूट कर भरी हुई है। इस में जातिय अभिमान तथा गौरव का मार्मिक स्पन्दन है। इसे पढ़ कर एक निराश तथा कायर हृदय में भी अद्भुत स्फूर्ति का संचालन हो जाता है। इनके भावों में उग्रता और वर्णन-शैली में चमत्कारिता तथा मौलिकता है। ये अपने समय के हिंदुओं के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं—



१

गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताज को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को।
भूषन अखंड नवखंड महि मंडल मैं,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देस दच्छिन तें उत्तर लौं,
जहाँ पातसाही वहाँ दावा सिवराज को॥

२

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिबाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्र बाह पर राम-द्विजराज है॥
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,
'भूषन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥

३

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषण' भनत नाद बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैयरन के रलत है॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल पेल सैल उलसत है॥
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥

४

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं,
उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें।
भूषन भनत, बिन भूषन बसन, साधे,
भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दते॥
बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने,
कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द तें।
दृग कज्जल जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो,
दूजो सोत तरनि तनुजा को कालिन्द तें॥

५

ऊँचे घोर मंदर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।

कंद मूल भोग करैं कंद मूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥

६

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद बिधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं॥



वृन्द

कविवर वृन्द का जन्म संवत् निर्भ्रान्त रूप से ज्ञात नहीं है। हां, इनकी सुप्रसिद्ध तथा अत्यन्त लोक-प्रिय रचना 'वृन्द सतसई' का निर्माण काल संवत् १७६१ निश्चित है। यह ग्रन्थ कवि की मानसिक प्रौढता तथा गहराई का परिचायक हैं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह ग्रन्थ कमसे कम तीस वर्ष की अवस्था से पूर्व नहीं लिखा गया होगा। इससे अनुमानतः कवि का जन्म काल संवत् १७३० के लगभग समझना चाहिए। ये औरंगजेब के दरबारी कवि थे। 'सतसई' के अतिरिक्त 'भाव पञ्चाशिका, तथा 'शृङ्गार शिक्षा' भी इनकी रचनाएँ प्राप्य हैं।

वृन्द सतसई

विधि रूठै तूठै कवन को करि सकै सहाय।
बनदव भय जलगत नलिन तहँ हिम देत जराय ॥

अति परचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय ॥

विधि के बिरचे सुजन हूँ दुर्जन सम ह्वै जात ।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात ॥

बिन गुन कुल जाने विना मान न करि मनुहारि ।
ठगत फिरत सब जगत कौं भेष भक्त कौ धारि ॥

हितहू की कहियै न तिहिं जो नर होय अबोध ।
ज्यौं नकटे कौं आरसी होत दिखाये क्रोध ॥

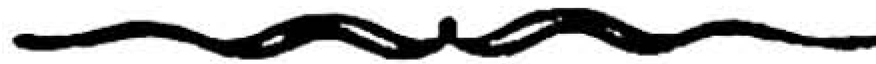
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय ॥

कछु बसाय नहिं सबल सौं करै निबल पर जोर ।
चलै न अचल उखारि तरु डारति पवन झकोर ॥

लालच हू ऐसौ भलौ जासौं पूरे आस ।
चाटे हूँ कहु ओस के मिटै काहु की प्यास ॥
जो सब ही कौ देत है दाता कहिये सोइ ।
जलधर बरसत सम बिषम थल न बिचारत कोइ ॥
सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत ।
दिवस गए ज्यों निसि उदित निसगत दिवस उदोत ॥
पर घर कबहूँ न जाइये गए घटत है जोति ।
रवि मंडल में जात ससि छीन कला छवि होति ॥
होय शुद्ध मिटि कलुषता सत संगति को पाय ।
जैसे पारस को परसि लौह कनक ह्वै जाय ॥
जे चेतन ते क्यौं तजैं जाकौ जासौं मोह ।
चुंबक के पीछै लग्यौ फिरत अचेतन लोह ॥
घटति बढ़ति संपति सुमति गति अरहट की जोय ।
रीति घटिका भरति है भरी सु रीती होय ॥
एक बिरानौ ही भलौ जिहिं सुख होत सरीर ।
जैसैं बन की औषधी हरत रोग की पीर ॥
जो पावै अति उच्च पद ताकौ पतन निदान ।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं अस्त होतु है भान ॥
बहुत निबल मिलि बल करैं करैं जु चाहै सोय ।
तिनकन की रसरी करी करी निबंधन होय ॥
सुजन कुसङ्गति सङ्ग तैं सज्जनता न तजन्त ।
ज्यौं भुजंग गन सङ्ग तउ चन्दन विष न धरंत ॥

थोरे ही गुन तैं कहुँक प्रगट होत जग मांहि।
एकहि कर ते जय करी करी सहसकर नाहिं॥
साँच भूँठ निरनै करै नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै छीर नीर कौं दोय॥
उद्यम कबहुँ न छाँड़ियै पर आसा के मोद।
गागरि कैसें फोरिये उनयौ देखि पयोद॥
हितहू भलौ न नीच कौ नाहिन भलौ अहेत।
चाटि अपावन तन करै काटि स्वान दुख देत॥
बिपत परे सुख पाइये ता ढिग करिए भौन।
नैन सहाई बधिर के, अंध सहाई स्रौन॥
होत न कारज मो बिना यह जु कहै सु अयान।
जहाँ न कुक्कुट शब्द तहँ होत न कहा बिहान॥
कोऊ दूर न करि सकै बिधि कै उलटे अङ्क।
उदधि पिता तउ चन्द को धोय न सक्यो कलङ्क॥
करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान॥
सुख दिखाय दुख दीजिये खलसों लरिये नाहिं।
जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहिं॥
सब सुख है सन्तोष में धरियै मन सन्तोष।
नेक न दुरबल होत है सर्प पवन के पोष॥
बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के ज्यों बारू की भीति॥

कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात॥
का रस में का रोष में अरि ते जनि पतियाय।
जैसैं सीतल तपत जल डारत आगि बुझाय॥
ऊँचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहू तैं ढरि जात॥
बिना दिए न मिलै कछू यह समझौ सब कोय।
होत सिसिर में पात तरु सुरभि सपल्लव होय॥
उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
परयौ अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय॥
सेवक सोई जानियै रहै बिपति में सङ्ग।
तन छाया ज्यौं धूप मैं रहै साथ इक रंग॥
छमा खड्ग लीने रहै खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि तें बुझि जाय॥



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(संवत् १६०७—१६४२)

भारतेन्दु 'रीतिकाल के पश्चात्' एक नये युग के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। इनसे पहले हिन्दी कविता प्रायः नायिका के नखशिख, मानवी सौन्दर्य के केवल बाह्य स्वरूप, तथा वासना-प्रधान शृङ्गार तक ही सीमित थी। शताब्दियों से इन्हीं विषयों पर कविता होने के कारण काव्य चेत्र में निर्जीवता सी आगयी थी। जातीयता का पूर्ण अभाव था। प्रकृति के वास्तविक सौन्दर्य की गहराई तक कवि की कल्पना पहुँचती ही नहीं थी। इन्होंने अपनी अद्भुत प्रतिभा से साहित्य के अवश्यंभावी पतन का अनुभव कर काव्य सरिता की धारा को बिलकुल नयी दिशा में बदल दिया। परतन्त्रता से जकड़े हुए देश और कुरीतियों के बोझे तले दबे हुए समाज की समस्याओं को कवियों के सामने उपस्थित किया। भाषा के सम्बन्ध में इन दिनों झगड़ा चल रहा था कि हिन्दी उर्दू मिश्रित हो या नहीं। इन्होंने शुद्ध हिन्दी का पक्ष लेकर उसे एक नया ही रूप दे दिया।

देश-प्रेम की मात्रा इन में बहुत अधिक थी। प्रायः इनकी प्रत्येक मुख्य रचना में देश की दुरावस्था पर वास्तविक व्यथा-पूर्ण उद्गार मिलते हैं। इन्हों ने लग-भग १७५ ग्रन्थों की रचना की है। इन में से कुछ मौलिक और कुछ दूसरे ग्रन्थों से अनुवाद हैं। इनकी रचनाओं में सत्य हरिश्चन्द्र, अँधेर नगरी, मुद्राराक्षस, और चन्द्रावली आदि नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं।

गंगावर्णन

नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नर गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरि पद-नख-चन्द्रकान्त मनि-द्रवित सुधा-रस ।
ब्रह्म कमण्डल-मण्डन भवखण्डन सुर सरबस ॥
शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति पुण्य-फल ।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन ।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यौ जगधाई ।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ वँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत ॥

धवल धाम चहुँ ओर फरहरत ध्वजा पताका ।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत ।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छवि पावत ।
वारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि-मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितहीं ठहराई ।
गंगा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

[२]

सहत बिबिध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग ।
पै निज सत्य न छाँड़हीं, जे जग साँचे लोग ॥
बरु सूरज पच्छिम उगै, विन्ध्य तरै जल माहिं ।
सत्य बीरजन पै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं ॥

[३]

जिनके हितकारक पंडित हैं तिनकों कहा सत्रुन को डर है ।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है ॥
जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनकों तिनकाहू महासर है ।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब ही थर है ॥

[४]

जागो जागो रे भाई।
सोअत निसि वैस गँवाई। जागो जागो रे भाई॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ काल राति चलि आई।
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई॥
अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई।
फिर पछिताये कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुँह बाई॥

[५]

जगतमें घर की फूट बुरी।
घर की फूटहिं सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥
फूटहिं सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत में अबलौं नहिं पुजयो॥
फूटहिं सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम।
जाको फल अवलौं भोगत सब आरज ह्वै गुलाम॥
फूटहिं सों नव नंद बिनासे गयो मगध को राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाहयौ आपु नसे सह साज॥
जो जग में धन मान और बल अपुनौ राखन होय।
तो अपने घर में भूलेहु फूट करो मति कोय॥



श्रीधरपाठक

इन का जन्म-सम्वत् १९१६ में आगरा ज़िला के जौधरी ग्राम में हुआ था और मृत्यु संवत् १९८५ में मंसूरी में हुई थी। ये संस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे और १०, ११ वर्ष की अवस्था में ही संस्कृत बोलने और लिखने लगे थे। इन्होंने ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों में कविता की है। ये प्रकृति-सौन्दर्य के बड़े प्रेमी थे और इनकी कविता में भी प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अत्यन्त मनोहर है। इन्हों ने अङ्गरेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की तीन कविताओं का हिंदी में अत्यन्त सुन्दर तथा सफल पद्यानुवाद किया है। ये लखनऊ में होने वाले अखिल भारतीय हिन्दी साहित्यसम्मेलन के सभापति बनाए गए थे।

इनकी रचनाओं में से निम्नलिखित ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं:—

जगत सचाई सार, काश्मीर सुषमा, मनोविनोद, देहरादून, भारत गीत, एकान्तवासी योगी, ऊजड़ग्राम, श्रान्त पथिक आदि।



काश्मीर सुषमा

कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर थैली ।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली ॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी ।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी ॥
प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति ।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ॥
विमल अम्बु-सर मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति ।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति ॥
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर ।
यहिं अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर ॥

बन-शोभा

चारु हिमाचल आँचल में इक साल बिसालन कौ बन है ।
मृदु मर्मर शील झरैं जल स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन कौ गन है ।
भटक्यौ तहाँ रावरौ भूल्यौ फिरै, मद बावरौ सौ अलि को मन है ॥
भारत में वन ! पावन तू ही, तपस्वियों का तप-आश्रम था ।
जग-तत्त्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया स्तम था ॥

ईश्वर-लीला

ध्यान लगा कर जो देखो तुम सृष्टी की सुघराई को ।
बात बात में पाओगे उस ईश्वर की चतुराई को ॥
ये सब भाँति-भाँति के पत्ती ये सब रंग रंग के फूल ।
ये बन की लहलही लता नव ललित ललित शोभा की मूल ॥
ये नदियाँ ये झील सरोवर कमलों पर भौंरों की गुंज ।
बड़े सुरीले बोलों से अनमोल घनी वृत्तों की कुंज ॥
ये पर्वत की रम्य शिखा अरु शोभा-सहित चढ़ाव उतार ।
निर्मल जल के सोते, झरने सीमा-रहित महा विस्तार ॥
छै प्रकार की ऋतु का होना नित नवीन शोभा के संग ।
पाकर काल वनस्पति फलना रूप बदलना रंग-बिरंग ॥
चाँद सूर्य की शोभा अद्भुत बारी से आना दिन रात ।
त्यों अनन्त तारा-मंडल से सज जाना रजनी का गात ॥

यह समुद्र का पृथ्वी तल पर छाया जो जल-मय विस्तार।
उसमें से मेघों के मंडल हों अनन्त उत्पन्न अपार॥
लर्जन-गर्जन घन-मंडल की बिजली वर्षा का विस्तार।
जिसमें दीखै परमेश्वर की लीला अद्भुत अपरम्पार॥



पं० नाथूराम शङ्कर

पं० नाथूराम शङ्कर का जन्म सं० १९१६ में हरदुआगंज, ज़िला अलीगढ़ में हुआ था। बहुत छोटी अवस्था में ही माता का आश्रय उठ जाने के कारण इनका पालन पोषण इनकी नानी और बुआ ने किया। ये बहुत कुशाग्र बुद्धि थे और १३ वर्ष की अवस्था में ही अच्छी कविता करने लग पड़े थे। ये ब्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों में कविता करते थे। इनकी कविता में समाज सुधार की प्रेरणा अधिक होती है। इनकी मुख्य रचनाएं ये हैं—

शङ्कर सरोज, अनुरागरत्न, वायस विजय आदि।



रंक-रोदन

[१]

क्या शंकर, प्रतिकूल काल का अन्त न होगा ?
क्या मंगल से मेल मृत्यु-पर्यंत न होगा ?
क्या अनुभूत दरिद्र दुःख अब दूर न होगा।
क्या दाहक दुर्दैव-कोप कर्पूर न होगा॥

[२]

होकर मालामाल पिता ने नाम किया था।
मैंने उनके साथ न घर का काम किया था॥
विद्या का भरपूर अटल अभ्यास किया था।
पर औरों की भाँति न कुछ भी पास किया था॥

[३]

उद्यम की दिन-रात कमान चढ़ी रहती थी।
यश के सिर पर वर्ण-उपाधि मढ़ी रहती थी॥
दान मान की ज्योति अखण्ड जगी रहती थी।
भिखमंगों की भीड़ सदैव लगी रहती थी॥

[४]

जीवन का फल पूज्य पिता जी पाय चुके थे।
कर पूरे सब काम कुलीन कहाय चुके थे॥
सुन्दर स्वर्ग समान विलास बिसार चुके थे।
हम सब उनका अन्त अनन्त निहार चुके थे॥

[५]

बाँध बाप की पाग बना मुखिया घर का मैं।
केवल परमाधार रहा कुनबे भरका मैं॥
सुख से पहली भाँति निरंकुश रहता था मैं।
क्या करता है कौन, न कुछ भी कहता था मैं॥

[६]

जिनका संचित कोष खिलाया खाया मैंने।
करके उनकी होड़ न द्रव्य कमाया मैंने॥
लूट रहे थे लोग न छल पहचाना मैंने।
घाटे का परिणाम कठोर न जाना मैंने॥

[७]

अटके डिगरीदार किसी ने दाम न छोड़े।
छीन लिये धनधाम, ग्राम, आराम न छोड़े॥
हाय किसी के पास विभूषण वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि पुलिस ने शस्त्र न छोड़े॥

[८]

बैठ रहे मुख मोड़ पुराने आने वाले।
लेते नहीं प्रणाम लूटकर खानेवाले ॥
देते हैं दुर्वाद बड़ाई करने वाले ।
लड़ते हैं बिन बात अड़ी पर मरने वाले ॥

[९]

कविता-प्रेमी लोग न अब सत्कवि कहते हैं।
हा! न विज्ञ विज्ञान-गगन का रवि कहते हैं॥
धर्म-धुरन्धर धीर, नहीं गुरुजन कहते हैं।
मुझको सब कंगाल धनी निर्धन कहते हैं॥

[१०]

वित्त बिना विख्यात विरद विपरीत हुआ है।
मन मेरा निश्शंक महा भयभीत हुआ है॥
कंगाली की मार पड़ी रस-भंग हुआ है।
जीवन का मग हाय विधाता तंग हुआ है॥

[११]

प्रतिभा को प्रतिवाद प्रचण्ड लताड़ चुका है।
आदर को अपमान-पिशाच पछाड़ चुका है॥
पौरुष का सिर नीच निरुद्यम फोड़ चुका है।
हाय हर्ष का रक्त विषाद निचोड़ चुका है॥

[१२]

दरसे देश उदास, जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास, मित्र सुखमूल नहीं है॥
छूटे नातेदार किसी से मेल नहीं है।
घर में हाहाकार खुशी का खेल नहीं है॥

[१३]

मंगल को रिपु घोर अमंगल घेर रहा है।
ह्रास त्रास के बीज विनाश बिखेर रहा है॥
दीन मलीन कुटुम्ब कर्म को कोस रहा है।
मेरा कंठ अदम्य दरिद्र मसोस रहा है॥

[१४]

बालक चोखे खान-पान पर अड़ जाते हैं।
खेल खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
पर मनमानी वस्तु बिना बस रह जाते हैं।
हाय हमारे काढ़ कलेजे सो जाते हैं॥

[१५]

फूल फूल कर फूल फली फल खाने वाले।
नाना व्यंजन पाक प्रसादी पाने वाले॥
दूध रसाला आदि सुधारस पीने वाले।
हाय, बने हम शाक चनों पर जीने वाले॥

[१६]

लड़के लकड़ी बीन-बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा दो-तीन बार जल भर देते हैं।
माँग माँग कर छाछ महेरी भर देते हैं॥

[१७]

छप्पर में बिन बाँस घुने एरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम घने घट-खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ ? छै सात फटे से टाट पड़े हैं।
चक्की पीसे कौन बिना 'भिड़' पाट पड़े हैं॥

[१८]

जाड़े का प्रतियोग, न उष्ण विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार न शीतल वास मिलेगा॥
घेर रहा बरसात न सूखा ठौर मिलेगा।
इस खँडहर को छोड़ कहाँ घर और मिलेगा॥

[१६]

कर कर केहरिनाद बलाहक बरस रहे हैं।
अस्थिर विद्युद् दृश्य दशों दिशि दरस रहे हैं॥
गँदला पानी छेद छत्त से छोड़ रहे हैं।
इन्द्र देव जी टाँग त्राण की तोड़ रहे हैं॥

[२०]

दिया जले किस भाँति तेल को दाम नहीं है।
काटें मच्छर डांस कहीं आराम नहीं है॥
टूट पड़े दीवार यहाँ सन्देह नहीं है।
कर दे पनियाँढार नहीं तो मेह नहीं है॥

[२१]

बीत गई अब रात अँधेरा दूर हुआ है।
संकट का कुल हाय न चकनाचूर हुआ है॥
आज तीसरा रुद्र-रूप उपवास हुआ है।
हा! हम सबका घोर नरक में बास हुआ है॥

[२२]

'बपातिसमा' सकुटुम्ब बिशप से ले सकता हूँ।
धन्यवाद प्रभु ईशस्वामि को दे सकता हूँ॥
धन-गौरव सम्पन्न आज ही हो सकता हूँ।
पर क्या अपना धर्म पेट पर खो सकता हूँ॥

[२३]

देश भक्ति की चाल कटीली चल सकता हूँ।
नोटिस देकर पुण्य-प्रसाद निगल सकता हूँ॥
लोलुप लीला भाँति भाँति की रच सकता हूँ।
फिर क्या मैं कापट्य-पाप से बच सकता हूँ॥

[२४]

जो जगती पर बीज पाप के बो न सकेगा।
जिसका साहस सत्य धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि के विपरीत कभी कुछ कर न सकेगा।
रो रोकर वह रंक कहाँ तक मर न सकेगा॥



अयोध्यासिंह उपाध्याय

पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय का जन्म संवत् १६२१ में आज़म गढ़ ज़िले के अन्तर्गत निज़ामाबाद ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित भोलासिंह उपाध्याय था। ये पहले निज़ामाबाद के तहसीली स्कूल में अध्यापक थे। पीछे बहुत वर्ष तक कानून गा रहे और पैन्शन हो जाने के बाद से ही आजकल काशी के हिन्दू विश्व विद्यालय में हिंदी साहित्य के अवैतनिक अध्यापक हैं।

ये गद्य और पद्य दोनों के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। ये सरल से सरल और कठिन से कठिन गद्य और पद्य दोनों लिखने में सिद्धहस्त हैं। इन्होंने व्रज भाषा तथा खड़ी बोली दोनों में कविता की है। ये अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। इनका मुख्य ग्रन्थ 'प्रिय प्रवास' हिन्दी जगत में बहुत प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त इनकी मुख्य रचनाएं ये हैं—

चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोल चाल। पद्य प्रसून, ठेठ हिन्दी का ठाठ इत्यादि।

वर्तमान हिन्दी कवियों में इनका विशेष गौरव-पूर्ण स्थान है।



यशोदा का विरह

(प्रिय प्रवास से)

प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है॥
लख मुख जिसका मैं आज लौं जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है ॥ १ ॥
पल पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी।
निशि दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला।
वह नवनलिनी से नैनवाला कहाँ है ॥ २ ॥
मुझ विजित-जरा का एक आधार जो है।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा ॥
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला।
सजल जलद की सी कान्ति वाला कहाँ है ॥ ३ ॥
प्रति दिन जिसको मैं अङ्क में नाथ ले के।
निज सकल कुअङ्कों की क्रिया कीलती थी॥

अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला।
वह किसलय के से अङ्ग वाला कहाँ है ॥ ४ ॥
वर बदन विलोके फुल्ल अंभोज ऐसा।
करतल गत होता व्योम का चन्द्रमा था ॥
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का।
वह मधुमयकारी मानसों का कहाँ है ॥ ५ ॥
रसमय बचनों से नाथ जो सर्वदा ही।
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था ॥
श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की।
वह नव-ध्वनि न्यारी मञ्जुता की कहाँ है ॥ ६ ॥
स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी।
मम परम निराशा यामिनी का विनाशी ॥
व्रज-जन विहगों के वृन्द का मोद-दाता।
वह दिनकर शोभी रामभ्राता कहाँ है ॥ ७ ॥
मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती सी।
अनुपम जिसका हूँ शील सौजन्य पाती ॥
पर दुख लख के है जो समुद्विग्न होता।
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहाँ है ॥ ८ ॥
गृह तिमिर निराशा का समाकीर्ण जो था।
निज मुख-द्युति से है जो उसे ध्वंसकारी ॥
सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा।
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहाँ है ॥ ९ ॥

सहकर कितने ही कष्ट औ' सङ्कटों को।
बहु यजन करा के पूज के निर्जरों को॥
यह सुअन मिला है जो मुझे यत्न द्वारा।
प्रियतम! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहाँ है॥ १०॥

हमें नहीं चाहिए

[१]

आप रहे कोरा शरीर के वसन रँगावे।
घर तज करके घरबारी से भी बढ़ जावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमको साधू।
मन को मूँड़ न सके मूँड को दौड़ मुड़ावे॥

[२]

मन का मोह न हरे, लार धन पर टपकावे।
मुक्ति बहाने भूल-भुलैयाँ बीच फँसावे॥
हमें चाहिए गुरू नहीं ऐसा अविवेकी।
जो न लोक का रखे न तो परलोक बनावे॥

[३]

बूझ न पावे धर्म-मर्म बकवाद मचावे।
सार वस्तु को बचन चातुरी में उलझावे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमको पण्डित।
जो गौरव के लिए शास्त्र का गला दबावे॥

[४]

न तो पढ़ा हो न तो कभी कुछ कर्म करावे।
कर सेवाएं किसी भाँति जीविका चलावे॥
कभी चाहिए नहीं पुरोहित हमको ऐसा।
पूरा क्या, जो हित न अधूरा भी कर पावे॥

[५]

सींचे साधे वेद वचन को खींचे ताने।
अपने मन अनुसार शास्त्र सिद्धान्त बखाने॥
हमें चाहिए नहीं कभी ऐसा उपदेशक।
जो न धर्म की अति उदार गति को पहचाने॥

[६]

बके बहुत, थोथी बातें कह मूँछें टेवे।
निज समाज का रहा सहा गौरव हर लेवे॥
इस प्रकार का हमें चाहिए नहीं प्रचारक।
कलह फूट का बीज जाति में जो बो देवे॥

[७]

चाहे सुनियम तोड़ ढोंग रचना मनमाने।
मतलब गांठा करे समाज-सुधार बहाने॥
नहीं चाहिए कभी सुधारक हमको ऐसा।
ठीक-ठीक जो नहीं जाति-नाड़ी-गति जाने॥

[८]

'घी मिलने की चाह रखे औ' वारि बिलोवे।
जिसकी नीची आँख जाति का गौरव खोवे॥
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमको नेता।
जो हो रुचि का दास नाम का भूखा होवे॥

[९]

तत तक जिसकी आँख समय पर पहुँच न पावे।
थोड़ा सा कुछ करे बहुत सा ढोल बजावे॥
देश-हितैषी नहीं चाहिए हमको ऐसा।
मरे नाम के लिए देश के काम न आवे॥

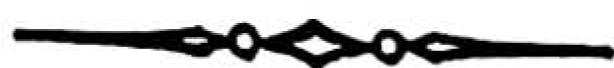
[१०]

निज पद गौरव साथ सभा को जो न सँभाले।
सभी सुलझती हुई बात को जो उलझाले।
इस प्रकार का नहीं चाहिए हमें सभापति।
जिसे जो चाहे वही मोम की नाक बनाले॥



मैथिलीशरण गुप्त

ये आधुनिक काल के कवियों में सबसे अधिक लोक-प्रिय तथा प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म संवत् १९४३ में चिरगाँव जिला झाँसी में हुआ था। इनके पिता श्री रामचरण जी भी कविता करते थे और इनके भाई सियाराम शरण जी का भी काव्यक्षेत्र में गौरव-पूर्ण स्थान है। गुप्त जी की भाषा सरल तथा भाव हृदय-ग्राही होते हैं। इनके काव्य में राष्ट्रीयता तथा सामाजिक सुधार की अत्यन्त मनोरम प्रेरणा रहती है। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत तथा बगंला के भी अच्छे विद्वान हैं। इनकी काव्य कृतियों में भारत-भारती, जयद्रथ-बध, यशोधरा, तथा साकेत विशेषतया उल्लेखनीय हैं। भारत-भारती का विद्यार्थी-जगत् में विशेष सम्मान हुआ है। साकेत महाकाव्य इनकी कीर्ति का मुख्य स्तम्भ है। इस पर इन्हें मगंलाप्रसाद पारितोषिक मिल चुका है। इनके रचे हुए मौलिक तथा अनुवादित ग्रन्थों की संख्या २० के लगभग है। अभी पिछले दिनों आपके कुछ और काव्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, जिनमें सिद्धार्थ, द्वापर, मंगल-घट प्रसिद्ध हैं।



मातृभूमि

मृतक समान अशक्त, अवश, आँखों को मीचे
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे;
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल अङ्क में त्राण किया था,
जो जननी का भी सर्वदा,
थी पालन करती रही ?
तू क्यों न हमारी पूज्य हो ?
मातृभूमि मातामही !

[२]

जिसकी रज में लोट लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरक कर खड़े हुए हैं;
परमहंस-सम बाल्य-काल में सब सुख पाये,
जिसके कारण 'धूलि-भरे हीरे' कहलाये;

हम खेले कूदे हर्ष युत
जिसकी प्यारी गोद में ।
हे मातृभूमि, तुझको निरख
मग्न क्यों न हों मोद में ?

[३]

पालन पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही;
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो ! तुझी से तुझ पर सारे;
हे मातृभूमि, हम जब कभी
तेरी शरण न पायँगे ।
बस, तभी प्रलय के पेट में
सभी लीन हो जायँगे ॥

[४]

हमें जीवनाधार अन्न तूही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है;
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा;
हे मातृभूमि उपजें न जो
तुझ से कृषि-अंकुर कभी ।
तो तड़प तड़प कर जल मरें
जठरानल में हम सभी ॥

[५]

पाकर तुझ से सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हम से होगा ?
तेरी ही यह देह, तुझी से बनी हुई है,
बस तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है;
फिर अन्त समय तूही इसे
अचल देख अपनायगी ।
हे मातृभूमि, यह अन्त में
तुझ में ही मिल जायगी ॥

[६]

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता;
जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित होजाता,
नहीं टूटता कभी जन्म भर जिन से नाता;
उन सब में तेरा सर्वदा,
व्याप्त हो रहा तत्व है !
हे मातृभूमि, तेरे सदृश,
किसका महा-महत्व है ?

[७]

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है;

षड्ऋतुओं का विविध दृश्य युत अद्भुत क्रम है
हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है;
शुचि सुधा सींचता रात में
तुझ पर चन्द्रप्रकाश है।
हे मातृभूमि, दिन में तरणि
करता तम का नाश है॥

[८]

सुरभित, सुन्दर, सुखद सुमन तुझ पर खिलते हैं,
भाँति भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं;
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नों वाली;
जो आवश्यक होते हमें
मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि, वसुधा-धरा
तेरे नाम यथार्थ हैं॥

[९]

दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी;
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी,
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी;

मृदु मलय-वायु मानों तुझे
चन्दन चारु चढ़ा रही !
हे मातृभूमि, किसका न तू
सात्विक भाव बढ़ा रही ?

[१०]

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है;
विभव शालिनी, विश्वपालिनी दुखहर्त्री है,
भय निवारिणी, शान्ति कारिणी सुखकर्त्री है,
हे शरण दायिनी देवि, तू,
करती सबका त्राण है।
हे मातृभूमि, सन्तान हम,
तू जननी, तू प्राण है॥

(मंगल घट से)



जयशङ्कर प्रसाद

बाबू जयशङ्कर प्रसाद का जन्म, सम्वत् १९४६ में काशी में हुआ था और मृत्यु पिछले वर्ष। ये वर्तमान काव्य-जगत् के प्रसिद्ध छायावादी कवि थे। ये हिन्दी में भिन्न-तुकान्त कविता के जन्मदाता कहे जाते हैं। भाषा की परिष्कृतता, भावों की मौलिकता तथा कल्पना की दृष्टि से इनकी रचनाओं का बहुत महत्व है। उच्च कोटि के कवि होने के अतिरिक्त ये प्रतिभाशाली गल्प-लेखक तथा सफल नाटककार भी थे। इनकी काव्य-रचनाओं में कानन-कुसुम, प्रेम-पथिक, झरना, लहर, आँसू तथा कामायनी विशेषतया उल्लेखनीय हैं। कामायनी हिंदी-काव्य का अनूठा रत्न है। इसमें कल्पना तथा अनुभूति दोनों का सुन्दर सामंजस्य है। इस वर्ष ही इस पुस्तक पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।



किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज
रँगी हो तुम किस के अनुराग ।
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल-
वेदना-दूती सी तुम कौन ?
अरुण शिशु के मुख पर सविलास,
सुनहरी लट घुँघराली कान्त,
नाचती हो जैसे तुम कौन ?—
उषा के अञ्चल में अश्रान्त ।
भला उस भोले मुख को छोड़,
और चूमोगी किसका भाल,
मनोहर यह कैसा है नृत्य,
कौन देता है सम पर ताल ?

कोकनद मधु धारा सी तरल,
विश्व में बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानन्द,
उठा कर सुन्दर सरस हिलोर ।
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलाती हो उससे भूलोक ?
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध,
बना दोगी क्या विरज विशोक?
सुदिन मणि वलय विभूषित उषा-
सुन्दरी के कर का संकेत—
कर रही हो तुम किस को मधुर,
दिखाती किसको प्रेम निकेत ।
चपल ! ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनन्त,
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसन्त

[झरना से]



कुछ नहीं

हँसी आती है मुझको तभी,
जब कि यह कहता कोई कहीं—
अरे सच, वह तो है कंगाल
अमुक धन उसके पास नहीं।

सकल निधियों का वह आधार,
प्रमाता अखिल विश्व का सत्य,
लिये सब उसके बैठा पास
उसे आवश्यकता ही नहीं।

और तुम लेकर फेंकी वस्तु,
गर्व करते हो मन में तुच्छ,
कभी जब ले लेगा वह उसे
तुम्हारा तब सब होगा नहीं

तुम्हीं तब हो जाओगे दीन
और जिसका सब संचित किए
साथ बैठा है सब का नाथ,
उसे फिर कमी कहाँ की रही?

शान्त रत्नाकर का नाविक
गुप्त निधियों का रक्षक यक्ष,
कर रहा वह देखो मृदु हास,
और तुम कहते हो कुछ नहीं।

[झरना से]

वियोगी हरि

इनका जन्म संवत् १९५३ में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित बलदेव प्रसाद द्विवेदी था। इनकी रचनाएं प्रेम और भक्ति-रस प्रधान होती हैं। इनकी 'वीरसत्सई' वीर-रस-प्रधान एक उत्कृष्ट काव्य है। इस पर इनको हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' मिल चुका है। इन्हों ने गद्य तथा पद्य में अनेक ग्रन्थों की रचना तथा संपादन किया है। इनकी मुख्य काव्य रचनाएं ये हैं—

प्रेम-पथिक, प्रेमाञ्जलि, वीरसत्सई, अनुरागवाटिका, कवि-कीर्तन, मेवाड़-केसरी, शुकदेव आदि।

संपादित—संक्षिप्त सूरसागर, बिहारी संग्रह, सूरसूक्तिसुधा, सूर-पदावली, मीरा बाई, आदि।



वीर व्रत

खंड खंड ह्वै जाय वरु, देतु न पाछें पेंड।
लरत सूरमा खेत की मरत न छाँड़तु मेंड ॥ १ ॥
खल घालक पालक सुजन सुहृद सदय गंभीर।
कहूँ एक सत लाख में प्रकृत सूर रणधीर ॥ २ ॥
लरतु काल सों लाख में कोई माइ को लाल।
कहु केते करवाल को करत कंठ कलमाल ॥ ३ ॥
कादर तौ जीवत मरत दिन में बार हजार।
प्रान पखेरू वीर के उड़त एक ही बार ॥ ४ ॥
अरे फिरत कत बावरे भटकत तीरथ भूरि।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर पग धूरि ॥ ५ ॥
जो जन लोभी सीस के ते अधीन दिन दीन।
सीसु चढ़ाये बिनु भयौ कहौ कौन स्वाधीन ॥ ६ ॥
एक ओर स्वाधीनता सीसु दूसरी ओर।
जो दो में भावे तुम्हैं मरि सो लेहु अँकोर ॥ ७ ॥
चूर चूर ह्वै अन्त लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि दूध पितु खड्ग की अहै परिच्छा आज ॥ ८ ॥
लोटि लोटि जापै भये धूरि धूसरित आज।
वत्स तुम्हारे हाथ है वा धरनी की लाज ॥ ९ ॥
पर भाषा, पर भाव, पर भूषन, पर परिधान।
पराधीन जन की अहै यह पूरी पहिचान ॥ १० ॥

माखनलाल चतुर्वेदी

इनका जन्म संवत् १६४५ में हुशंगाबाद ज़िला में बावई नामक स्थान में हुआ था। विद्यार्थी अवस्था से ही इनकी प्रवृत्ति साहित्य की ओर रही है। ये 'कर्मवीर' का सम्पादन करते हैं। राजनैतिक आन्दोलन में ये सचेष्ट भाग लेते रहे हैं और कई बार जेल जा चुके हैं। इनकी कविता में राष्ट्रीयता, परदुःखकातरता तथा सेवा भाव की सबल प्रेरणा रहती है। इनकी किसी भी कविता को उठा लीजिये राष्ट्रोत्थान की भावना तथा कर्म-शीलता की तत्परता उसके प्रत्येक पद में झलकती मिलेगी। इनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' है और प्रायः इसी नाम से काव्य करते हैं। इनकी कविताएं प्रायः सभी पत्रों में निकलती रहती हैं, परन्तु अभी तक उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। इनका 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक बहुत प्रसिद्ध है।



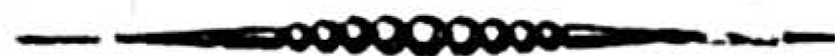
भारत के भावी विद्वान्

आज कई वीरों के रहते हुआ न उन्नत हिन्दुस्तान,
बना सका कोई गुण, विद्या, बल में उसे न गौरव-वान ॥
तो भी धीरज धरो, डरो मत, मेरे आशाकारी प्राण ।
देखो, कुछ कर दिखलावेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥ १ ॥
जिनको बाल समझ कर माता दूध पिलाती सुधा समान ।
जिनको पाल हुई है जगतीतल में वह आनन्द निधान ॥
जिनको लाल लाल कह उसने भुला दिया सुख-दुख का ध्यान
जानों उन्हें राष्ट्र की सम्पत् भारत के भावी विद्वान ॥२॥
हैं किस दुख से दुखी? विचारो; उनका हरो शीघ्र संताप ।
क्यों दुर्बल हैं? क्यों रोते हैं? क्यों भूले हैं मधुरालाप ?
माताओ! समझाओ उनको, देकर तन मन जीवन दान,
देखो! दुखी न होने पावें भारत के भावी विद्वान ॥ ३ ॥
आर्य्य-कीर्ति के स्तम्भ, सौख्य के सेतु, महत्ता के अवतार,
कठिन समय में, आशा के बस एक मात्र सच्चे आधार ॥
यही तुम्हारा कष्ट हरेंगे यही बनेंगे शक्ति निधान।
पिता! प्राण दे पाले ये हैं भारत के भावी विद्वान ॥ ४ ॥

आओ इनकी शिक्षा के हित उथल पुथल कर दें संसार।
इन्हें बनावें कला-कुशल, नय निपुण, वीर धीमान उदार॥
डरें न, प्रण पर मरें, करें कर्तव्य, बनावें दृढ़ सन्तान,
भारतीय हैं वहि, बनावें भारत के भावी विद्वान॥ ५॥
अब तो पिता निकम्मे होकर शिक्षा का कर सकें न यत्न।
राज्य, देश कोई न परखता, भारत वसुमती के ये रत्न॥
क्योंकर वह उन्नत होवेगा, खोवेगा अपना अज्ञान।
कई करोड़ मूर्ख हैं हा! जिस भारत के भावी विद्वान॥ ६॥
"अन्न नहीं है, फीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय!
जी में आता है पढ़ लिख लें, पर इसका है नहीं उपाय।
"कोई हमें पढ़ाओ भाई! हुए हमारे व्याकुल प्राण";
हा! हा! यों रोते फिरते हैं भारत के भावी विद्वान॥ ७॥
बूट चाहिये सूट चाहिये कालर हेट और नेकटाय,
केन चाहिये चेन चाहिये घड़ी सहित फिर डेली चाय।
देखो इस पर लिखा न होवे, "मेड् इन हिन्दुस्तान"
क्यों कि हमीं तो हैं, इस बूढ़े भारत के भावी विद्वान॥ ८॥
"शुभ्र वस्त्र हैं बुद्धि शस्त्र है, पढ़ते हैं बन में निश्शंक,
बढ़ा रही है बल वैभव को, प्यारी मातृ-भूमि की अङ्क॥
ब्रह्मचर्य्य रख सरस्वती पर दान करेंगे तन, मन, प्राण"।
ये हैं निस्सन्देह हमारे, भारत के भावी विद्वान॥ ९॥
किनको होगा जन्म-भूमि के कष्टों का पूरा अनुमान?
भाषा, भाव, भेष, भोजन में, भारतीयता का अभिमान।

कौन हमारा दुःख हरेंगे, हमें करेंगे गौरव-वान ?
यह सुन सच्चे हृदय कहेंगे, भारत के भावी विद्वान ॥ १० ॥
शिल्प गया वाणिज्य गया, शुभ शिक्षा का है मान नहीं,
कृषि भी डूबी हुये दरिद्री पर इसका कुछ ज्ञान नहीं !
हाय ! आज हम भोग रहे हैं झिड़की, घृणा और अपमान,
कैसे ये दुःख दूर करेंगे भारत के भावी विद्वान ॥ ११ ॥
प्रलय-कारिणी युवक-शक्ति की क्या सुन पाये बात नहीं ?
भीष्म-प्रतिज्ञा, लव-कुश-कौशल, पार्थ-पुत्र बल ज्ञात नहीं ?
भूलो मत, लिखलो निस्संशय, इसे हृदय में पक्की मान।
भारत का सब दुःख हरेंगे भारत के भावी विद्वान ॥ १२ ॥

सूरज ! सावधान हो जाओ, मातृ-भूमि तुम धर लो धीर।
पश्चिम ! तू भी शीघ्र सम्हल ले, नीति बदल बन जा गम्भीर ॥
कर्म-क्षेत्र में आते हैं अब करने को जननी का त्राण।
कई करोड़ दुःखों से व्याकुल भारत के भावी विद्वान ॥ १३ ॥



रामनरेश त्रिपाठी

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का जन्म संवत् १६४६ में जिला जौनपुर के अन्तर्गत कोहरीपुर में हुआ था। इन्होंने साहित्य-क्षेत्र में भिन्न-भिन्न दिशाओं में अत्यन्त उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण काम किया है। पथिक, मिलन, स्वप्न तथा मानसी से इनकी काव्य-प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। इनकी कविता में देश सेवा तथा राष्ट्रीयता की भावना अधिक रहती है। इनकी भाषा परिष्कृत तथा ओजस्विनी होती है। 'कविता-कौमुदी' इनके अनथक परिश्रम का सजीव प्रमाण है। इसके भिन्न-भिन्न भागों में इन्होंने ब्रज भाषा, खड़ी बोली, उर्दू, संस्कृत तथा बंगला के प्रसिद्ध कवियों का परिचय तथा उनकी उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह दिया है। 'ग्रामगीत' में इन्होंने अत्यन्त परिश्रम से भारत के ग्रामीण जगत् में नित्यप्रति गाए जाने वाले गीतों का संकलन किया है। बालोपयोगी साहित्य की वृद्धि करने में भी इन्होंने बहुत योग दिया है।



[१]

जग में सचर अचर जितने हैं सारे कर्म-निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को सब के निश्चित व्रत हैं।
जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है।

[२]

सिन्धु-विहङ्ग तरङ्ग-पङ्ख को फड़काकर प्रति क्षण में।
है निमग्न नित भूमि-अण्ड के सेवन में, रक्षण में।
कोमल मलय-पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
सस्य सींचने घन जीवन धारणकर नित जाता है।

[३]

रवि जग में शोभा सरसाता सोम सुधा बरसाता।
सब हैं लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता।
है उद्देश्य नितान्त तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का।
उसी पूर्ति में वह करता है अन्त कर्ममय तन का॥

[४]

तुम मनुष्य हो अमित बुद्धि बल विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य-रहित है जग में तुमने कभी विचारा ?
बुरा न मानों, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्तव्य समाप्त कर लिए तुमने निज जीवन में।

[५]

जिस पर गिरकर उदर दरी से तुमने जन्म लिया है।
जिसका खाकर अन्न, सुधा-सम नीर समीर पिया है।
जिसपर खड़े हुए खेले घर बना बसे सुख पाये।
जिसका रूप विलोक तुम्हारे दृग, मन प्राण जुड़ाये॥

[६]

वह स्नेह की मूर्ति दयामयी माता-तुल्य मही है।
उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ?
हाथ पकड़ कर प्रथम जिन्होंने चलना तुम्हें सिखाया।
भाषा सिखा हृदय का अद्भुत रूप स्वरूप दिखाया॥

[७]

जिनकी कठिन कमाई का फल खाकर बड़े हुए हो।
दीर्घ देह ले बाधाओं में निर्भय खड़े हुए हो।
जिनके पैदा किए, बुने वस्त्रों से देह ढके हो।
आतप-वर्षा-शीत-काल में पीड़ित हो न सके हो॥

[८]

क्या उनका उपकार-भार तुम पर लवलेश नहीं है ?
उनके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है।
सतत ज्वलित दुख-दावानल में जग के दारुन रण में।
छोड़ उन्हें कायर बनकर तुम भाग बसे निर्जन में॥

[९]

सद्गुण, साहस, सत्य शूरता लोकोत्तर उत्तमता।
पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुता, पर-पालन-क्षमता।
क्षमा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, विनयिता।
सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा, मन, निर्भयता॥

[१०]

यह सम्पत्ति धरोहर प्रभु की तुम्हें मिली धरने को।
अवसर पर प्रस्तुत रख जग-हित में वितरण करने को।
सो तुम सकल चुराकर जग से भाग बसे निर्जन में।
प्रभु से यह विश्वासघात करते न डरे तुम मन में ?

[पथिक से]



ठाकुर गोपाल शरणसिंह

इनका जन्म संवत् १६४८ में हुआ था। ये रीवां राज्य के सुप्रतिष्ठित इलाकेदारों में से हैं। ये पहले ब्रज-भाषा में कविता किया करते थे, परन्तु आज साधारण बोल-चाल की भाषा में करते हैं। भाषा की अत्यन्त सरलता तथा सरसता के कारण इनकी रचनाएं बहुत लोक-प्रिय हैं। ये १६८२ में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं। इनकी कविताओं का संग्रह 'माधवी' प्रकाशित हो चुका है। अभी हाल में आपका एक और संग्रह 'कादम्बिनी' नाम से भी प्रकाशित हुआ है।



ग्राम

प्रकृति सुन्दरी की गोदी में
खेल रहा तू शिशु सा कौन ?
कोलाहल-मय जग को हरदम,
चकित देखता है तू मौन ॥

जग के भोलेपन का प्रतिनिधि,
सहज सरलता का आख्यान।
विमल स्रोत मानव जीवन का,
तू है विधि का करुण-विधान ॥

छिपा मही के मृदु अञ्चल में,
जग का मूर्तिमान अनुराग ।
तुझ से ही सीखता जगत है,
औरों के हित करना त्याग ॥

होकर भी असभ्य तू ही है,
विश्व-सभ्यता का आधार ।
स्वावलम्ब की समुचित शिक्षा,
पाता तुझ से है संसार ॥

मानवता का प्रेम-निकेतन,
आदि सभ्यता का इतिहास।
भ्रातृ-भाव-समता-क्षमता का,
तू है अवनी में अधिवास॥

छल से रहता दूर किन्तु तू,
बल-पौरुष में है भरपूर।
तेरे जीवन-धन हैं जग में,
बस किसान एवं मज़दूर॥

कोयल तुझे सुना जाती है,
मधुमय ऋतु पति का संदेश।
खेतों में पौधे उग-उग कर,
देते हैं तुझको उपदेश॥

जग को जगमग करने वाला,
है तुझ में न प्रकाश महान।
पर मिट्टी के ही दीपक से,
रहता है तू ज्योतिष्मान—॥

सह सकता है कभी नहीं तू,
बाह्य जगत की तीव्र बयार।
तुझे प्राण-सम प्रिय है हरदम,
निज भोला-भाला संसार॥



सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

इनका जन्म संवत् १९५५ में मेदिनीपुर बंगाल में हुआ था। ये संस्कृत तथा बंगला भी बहुत अच्छी तरह जानते हैं और पहले इनमें कविता भी किया करते थे। दर्शनों का इन्होंने विशेष अध्ययन किया है। इनकी कविता में भी दार्शनिकता की मात्रा अधिक रहती है। इनकी कविता में भारतीयता तथा पाश्चात्य शैलियों का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। अतुकान्त कविता लिखने में इन्हें विशेष सफलता तथा कीर्ति प्राप्त हुई है। कविता के अतिरिक्त इन्होंने अनेक कहानियां तथा उपन्यास लिखे हैं। ये समालोचक भी हैं। अनामिका, परिमल, निरूपमा, तुलसीदास, रामशक्ति की पूजा आदि इनकी कविताओं तथा कहानियों के संग्रह निकल चुके हैं।



विधवा

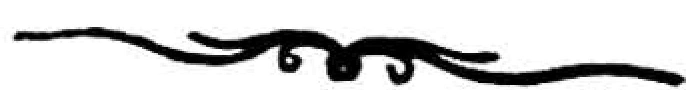
मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।
षड़—ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव-पद-सञ्चार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन-मधुकर की पाँखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार
उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर
लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर
अति छिन्न हुए भींगे अञ्चल में मन को–
दुख–रूखे सूखे अधर-त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में;
दुख सुनता है आकाश धीर,—
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहरकर।
कौन उसको धीरज दे सके?
दुःख का भार कौन ले सके?
यह दुःख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है!
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल?
या किया करते रहे सबको विकल?
ओस कण-सा पल्लवों से झर गया।
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया।

[परिमल से]

सुमित्रा नंदन पन्त

पण्डित सुमित्रा नन्दन पन्त का जन्म संवत् १६५८ में अलमोड़ा ज़िला में कौसानी में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० गङ्गादत्त पन्त और माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। साहित्य और काव्य रचना में अत्युग्ररुचि होने के कारण इन्होंने कालेज अध्ययन एफ. ए. में ही छोड़ दिया था। ये संस्कृत, बंगला तथा अंग्रेजी की भी अच्छी जानकारी रखते हैं। हिन्दी के छायावादी कवियों में इनका विशेष स्थान है इनकी कविता में कल्पना तथा भावना की मात्रा अत्यधिक होती है। प्रकृति-सौन्दर्य के ये बड़े प्रेमी हैं और प्राकृतिक पदार्थों में एक सजीव योजना का अनुभव करते हैं। ये तुकान्त तथा भिन्न तुकान्त दोनों प्रकार की रचना करते हैं। पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुञ्जन आदि इनके विविध कविता संग्रह हैं। आज कल आप काला काकंर से 'रूपाभ' नामक मासिक पत्र निकाल रहे हैं।



दुख

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा !

बन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली।

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने सा उज्ज्वल बनने
तपता नित प्राणों का धन।

दुख-दावा से नव-अंकुर
पाता जग जीवन का बन,
करुणार्द्र विश्व की गर्जन
बरसाती नव-जीवन-कण !

छाया

कहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई !

पीले पत्रों की शय्या पर
तुम विरक्ति-सी, मूर्छा-सी,
विजन-विपिन में कौन पड़ी हो
विरह-मलिन दुख-विधुरा सी

निर्जनता के मानस-तट पर
—बार बार भर ठण्डी-साँस—
क्या तुम छिपकर क्रूर-काल का
लिखती हो अकरुण-इतिहास ?

सखि भिखारिणी-सी तुम पथ पर
फैला कर अपना अञ्चल,
सूखे-पातों ही को पा क्यों
प्रमुदित रहती हो प्रतिपल ?

दिनकर-कुल में दिव्य-जन्म पा
बढ़ कर नित तरु वर के सङ्ग
मुरझे-पत्रों की साड़ी से
ढँक कर अपने कोमल अङ्ग;

सदुपदेश-सुमनों से तरु के
गूँथ हृदय का सुरभित हार,
पर-सेवा-रत रहती हो तुम,
हरती नित पथ श्रान्ति अपार



श्रीमती महादेवी वर्मा

इनका जन्म संवत् १६६४ में फर्रुखाबाद में हुआ था। इनके पिता का नाम बाबू गोबिन्द प्रसाद वर्मा और माता का नाम श्रीमती हेमरानी देवी है। इन्होंने एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त की है। ये प्रयाग के महिला विद्यापीठ की संचालिका हैं तथा मासिक पत्रिका चाँद का संपादन करती हैं। वर्तमान युग के छायावादी लेखकों में इनका विशेष स्थान है। इनकी कविता में दार्शनिकता, वेदना तथा निराशा का अंश अधिक रहता है। भावनाओं को मूर्तरूप देकर सजीव चित्रण करना इनकी कविता की विशेषता है। छायावादी कवियों में जितनी अनुभूति इनकी रचनाओं में पाई जाती है, उतनी अन्य कवियों में नहीं।

इनकी कविताओं के संग्रह, 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य-गीत प्रकाशित हो चुके हैं। 'नीरजा' पर इनको हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से ५००) 'सेकसरिया पारितोषिक' प्राप्त हुआ है।



अभिमान

आलोक वहां लुटता है
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन!

जिसकी विशाल छाया में
जग बालक सा सोता है,
मेरी आँखों में वह दुख
आँसू बन कर रोता है!

जग हँस कर कह देता है
मेरी आँखें हैं निर्धन,
इन के बरसाये मोती—
क्या वह अब तक पाया गिन?

मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को व्रीड़ा,
उसके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा?

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन?
उन में अनन्त करुणा है
इस में असीम सूनापन!

रामकुमार वर्मा

इनका जन्म संवत् १९६२ में मध्य-प्रदेश के सागर जिले में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री लक्ष्मीप्रसाद तथा माता का नाम श्रीमती राजरानी देवी था। श्री लक्ष्मी प्रसाद जी को सरकारी नौकरी वश अनेक स्थानों में जाना पड़ता था, इसीलिए रामकुमार जी की प्रारम्भिक शिक्षा मध्य प्रदेश के भिन्न भिन्न स्थानों पर हुई। आजकल ये इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में हिन्दी के प्रोफेसर हैं। कविता का शौक इन्हें विद्यार्थी अवस्था से है। रहस्य वाद के कवियों में इनका विशेष गौरव पूर्ण स्थान है। इनकी कविता कल्पना-प्रधान है। अनुभूति की मात्रा उसमें कुछ बहुत नहीं रहती। निराशा, करुणा वेदना इनके पद-पद से झरती है। उत्थान में पतन की, विकास में विनाश की, बसन्त में पतझड़ की तथा जन्म में मृत्यु की कल्पना करना, इनकी स्वाभाविक विशेषता है 'अभिशाप', 'अञ्जलि', 'रूप-राशि', 'निशीथ' तथा 'चित्ररेखा' आदि इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'चित्ररेखा' पर इनको दो हज़ार रुपया का 'देव पुरस्कार' मिल चुका है। पिछले दिनों से आपने एकांकी नाटक लिखना भी प्रारम्भ किया है, जिसमें इन्हें अच्छी सफलता मिली है।



अशांत

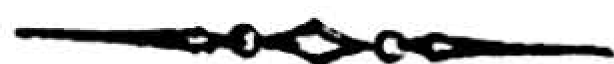
नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ
आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में
कैसे देखूँ जीत ?
उषा अभी सुकुमार क्षणों में
होगी वही सतेज;
लता बनेगी ओस विन्दु की
सरल मृत्यु की सेज;
कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप;
किसका गायन बने न-जाने मेरे प्रति अभिशाप।
क्या है अंतिम लक्ष्य—
निराशा के पथ का—अज्ञात !
दिन को क्यों लपेट देती है
श्याम वस्त्र में रात ?
और काँच के टुकड़े बिखरा—
कर क्यों पथ के बीच

भूले हुए पथिक शशि को दुख
देता है नभ नीच ?
वही निराशा मय उलझन है, क्या माया का जाल ?
जहाँ लता में लिपटा रहता छिपकर भीषण व्याल।
देख रहा हूँ बहुत दूर पर
शांति—रश्मि की रेख;
उस प्रकाश में मैं अशान्त, तम
ही सकता हूँ देख।
काँप रही स्वर-अनिल-लहर
रह-रहकर अधिक सरोष;
डर कर निरपराध मन अपने
ही को देता दोष !
कैसा है अन्याय ? न्याय का स्वप्न देखना पाप !
मेरा ही आनंद बन रहा मेरा ही संताप।
हास्य कहाँ है ? उसमें भी है
रोदन का परिणाम;
प्रेम कहाँ है ? घृणा उसी में
करती है विश्राम
दया कहाँ है ? दूषित उसको
करता रहता रोष;
पुण्य कहाँ है उसमें भी तो
छिपा हुआ है दोष।

धूल हाय ! बनने ही को खिलता है फूल अनूप;
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप।
मेरे दुख में प्रकृति न देती
क्षण-भर मेरा साथ;
उठा शून्य में रह जाता है
मेरा भिक्षुक हाथ।
मेरे निकट शिलायें पाकर
मेरा श्वास प्रवाह
बड़ी देर तक गुंजित करती
रहती मेरी आह
'मर-मर, शब्दों में हँसकर पत्ते हो जाते मौन।
भूल रहा हूँ स्वयं, इस समय मैं हूँ जग में कौन ?
वह सरिता है चली जा रही
है चंचल अविराम;
थकी हुई लहरों को देते
दोनों तट विश्राम।
मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशि दिन आठों याम
नहीं सुना मेरे भावों ने
'शांति-शांति' का नाम।
लहरों को अपने अंगों में तट कर लेता लीन
लीन करेगा कौन ? अरे यह मेरा हृदय मलीन !

उदयशंकर भट्ट

इनका जन्म संवत् १९५५ में हुआ था। ये हिन्दी के उत्कृष्ट कवि तथा नाटककार हैं। 'तक्षशिला' नाम का ऐतिहासिक काव्य इनका बहुत प्रसिद्ध है। 'राका' नाम से इनकी कविताओं का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। दुःखान्त नाटक लिखकर इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की है। दाहर, विक्रमादित्य, अम्बा, सगर विजय आदि इनके नाटकों का हिन्दी जगत् में अच्छा आदर हुआ है। इन्होंने गुमानीसिंह की कृष्ण-चंद्रिका का सम्पादन भी किया है। इनकी कविता में वेदना, उग्रता तथा अनुभूति की मात्रा अत्यधिक रहती है। कल्पना के साथ साथ दार्शनिकता की झलक भी दीख पड़ती है। इन्हें पञ्जाब सरकार की ओर से दो बार पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। पिछले दिनों आपने 'मत्स्यगन्धा' तथा 'विश्वामित्र' नामक दो भावनाट्य भी लिखे हैं।



मैं

मैं हूँ जगमाला की लड़ियों का बिखरा सा मोती;
जिसमें कोई शक्ति निराला जीवन-तार पिरोती।
किसकी इच्छा का कण बन कर इस भूतल पर आया;
लिए विषाद हर्ष की मन में धुँधली उजली छाया
किसी की इच्छाओं का प्यार,
लुटाता मेरा हृदय उदार।
मैं हूँ इस विराट तंत्री की तारों का मन्द-स्वर;
जिसकी भेद भरी ध्वनि में जग गूँज रहा उत्सुकतर।
इस जीवन के रथ पर मुझको किसने बिठलाया है;
आया कौन दिशा से जाता समझ नहीं पाया है।
किन्तु, है अपनी छवि का ज्ञान,
मैं छविमान मैं छविमान।
मेरे दोनों ओर भावना मोहक गानें गाती;
भोली आँखों के पथ से जीवन में कहीं समाती?
सौन्दर्य काँटे फूलों का एक मुकुट सा पहने,
ठहरो कुछ क्षण, यहाँ मुसाफिर, लगता है यह कहने।

रूप अपना ले कुछ पहिचान,
ओ छविमान, ओ छविमान।
घटनावश मौजों के झोंके मुझे उड़ा ले जाते;
भावों की नौकायें मेरी सुख लहरों निहलाते।
मेरे जीवन की धाराएँ पल पल दिशा बदल कर;
विषम तटों से टकराती हैं विषम पन्थ से चलकर।
कौन तोड़ता तेरा मान,
ओ छविमान ओ छविमान।
कभी ताकतीं घटनाओं के झुरमुट से कुछ हँस कर;
विधि रेखाएँ जुगुनू की सी देख पड़ी हैं नश्वर।
शैवालों की मोटी तह पर नाच रहा लय देकर;
जीवन की स्मृतियों में वेसुध झूम रहा मद से भर
सागरिका की तरल तरंगों सा लहराता है मन
जीवन-तट की निठुर थपेड़ों से उकताता क्षन क्षन।
जगत का मुझ से है सम्मान,
जगत में हूँ मैं वस्तु महान
क्रोधों में हूँ खीज, हास में अट्टहास का उद्गम;
दुःखों में हूँ आह, विषमता समताओं का संगम।
विद्रोहों में घृणा प्रेम में चुम्बन अथ आलिङ्गन,
विरहों में बेचैनी मैं हूँ, दृढ़ता में कल कम्पन।
प्रबल प्रतीक्षा हूँ मिलने में, विद्वेषों में अनबन,
ज्ञानों में विज्ञान, सुखों में अपने पन का चिन्तन।

आशा में उत्कंठा हूँ मैं, रोने में हलकापन,
यत्नों में फल विफल बना हूँ, सूने में अपनापन
कुसुमों में सौरभ हूँ उड़कर जो जगतीतल भरता,
ओसों की उज्ज्वल बूँदों से हिलमिल हँसियाँ करता।
आशावरी और कल्यान,
मैं प्रभात का मृदु छविगान।
किसी अतीत काल से बैठा आया जीवन रथ में
आये रे आये कितने ही दृश्य हमारे पथ में।
बाहर की क्या कहूँ न मुझको अपनपेन का अनुभव,
पड़ा हुआ हूँ उधड़ेबुन में काट रहा जीवन लव।
मैं क्या हूँ फिर यह जग क्या है या जग की ध्वनि मैं हूँ,
या जग छाया में विराट के समय की झाँकी मैं हूँ।
जहाँ कल्पनाएँ थक जातीं तर्क विश्व सोता है,
उस अनन्त आलोक किरण में अहंवाद होता है।
विश्व में मेरा गीत महान,
मैं छविमान मैं छविमान।

[राका से]



सियाराम शरण गुप्त

इनका जन्म संवत् १६५२ में चिरगाँव ज़िला झाँसी में हुआ था। ये महाकवि मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई हैं। इनकी कविता में राष्ट्रीयता, भावुकता का अच्छा सामंजस्य पाया जाता है। इनकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि पाठक के हृदय को आख्यान द्वारा आप्लावित करते हैं। इनकी भाषा संस्कृतमयी है परन्तु वह दुर्बोध नहीं। काव्य के अतिरिक्त उपन्यास, तथा कहानी लिखने में भी इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। इनकी रचनाओं में, मौर्य विजय, अनाथ, आर्द्रा, दूर्वादल, अन्तिम आकांक्षा, विषाद, मृण्मयी, नारी आदि प्रसिद्ध हैं।



सुजीवन

हे जीवन-स्वामी तुम हम को
जल-सा उज्ज्वल जीवन दो !
हमें सदा जल के समान ही
स्वच्छ और निर्मल मन दो !
रहें सदा हम क्यों न अतल में,
किन्तु दूसरों के हित पल में
आवें अचल फोड़ कर थल में;
ऐसा शक्ति-पूर्ण तन दो !
स्थान न क्यों नीचे ही पावें,
पर तप में ऊपर चढ़ जावें,
गिर कर भी क्षिति को सरसावें,
ऐसा सत्साहस धन दो !

[दूर्वादल से]

परीक्षा

मैं हूँ एक, अनेक शत्रु सम्मुख हैं मेरे;
क्रोध, लोभ, मोहादि सदा रहते हैं घेरे।
परमपिता, इस भाँति कहाँ मुझको ला पटका,
जहाँ प्रतिक्षण बना पराभाव का है खटका।
अथवा निर्बल समझ अनुग्रह है दिखलाया,
करने को बल-वृद्धि अखाड़े में पहुँचाया
सबल बनू मैं घात और प्रतिघात सहन कर,
ऊपर कुछ चढ़ सकूं और दुख-भार वहन कर।
इस कठिन परीक्षा-कार्य में
हो जाऊँ उत्तीर्ण जब
कर देना मानस-सद्म में
शान्ति-सुगन्धि विकीर्ण तब।

[दूर्वादल से]



जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

इनका जन्म संवत् १९६४ में मुशर रियासत ग्वालियर में हुआ था। ये १४ वर्ष की अवस्था से काव्य रचना कर रहे हैं। आधुनिक युग के छायावादी कवियों में इन्होंने अपना विशेष स्थान बना लिया है। इनकी कविता में ओज, सरसता, माधुर्य तथा गम्भीरता का सुन्दर सम्मिश्रण रहता है। इनकी प्रारंभिक रचनाओं से प्रकृति सौन्दर्य के सूक्ष्म निरीक्षण का अच्छा परिचय मिलता है। मानसिक विकास के दूसरे परिवर्तन में रची हुई कविताओं में राष्ट्रीयता की उग्र भावना दीख पड़ती है। तीसरे परिवर्तन में प्रेम, करुणा तथा वेदना पूर्ण रचनाओं की सृष्टि हुई है। आज कल की इनकी रचनाएँ छायावाद से संबन्ध रखती हैं।



नूतन और पुरातन

सजनि! शिशिर आया, बन-उपवन, देखो सिहर उठे तत्काल,
काँप उठे पीले पत्ते,—'अब छूटेगी तरुवर की डाल!',
एक-दूसरे से कहते हैं—"छोड़ो अब ममता माया;
जीवन का अवसान-सँदेशा निष्ठुर परिवर्तन लाया! ॥१॥
प्रबल वायु के झोंकों में मिलकर उड़कर होकर निर्मूल,
बनना पड़े एक दिन हमको दूर विजन के पथ की धूल,
इसके पूर्व, चलो, झड़कर भी, हम इतना सा काम करें
जब तक आय वसन्त, विटप के चरणों में विश्राम करें ॥२॥
आने वाले नव पल्लवों का, फिर, कर स्वागत सत्कार।
गत जीवन की त्रुटियों का लेखा दे जायँ पुकार-पुकार,
कह जावें-'हो नव वसन्त यह तुमको सुखकर श्रेयस्कर;
पर, प्यारो, यह भूल न जाना, जीवन सब का है नश्वर' ॥३॥
जिसमें जीने की सार्थकता, जिसमें खिलने का सम्मान,
उस सेवा की सरस साधना का प्रतिपल रखना तुम ध्यान
हारे-थके बटोही को तुम, हरे-भरे यौवन पर फूल,
हृदय खोलकर शीतल छाया देना कहीं न जाना भूल ॥ ४॥

खेल-खेल में खो न बैठना उरका सब सम्बल अनजान।
कहीं अन्त में रह न जायँ दृग में आँसू, उर में अरमान!
कहीं न अगला शिशिर अचानक आ तुमसे यह कहलाए–
'बीत गया पलकों में जीवन, हाय, न कुछ करने पाए"! ॥५॥
और इधर अपना भी तो, सखि! जीवन-लेख समाप्त हुआ,
नयनों का धन चुका, न प्राणों का संचय पर्याप्त हुआ!
निर्जन बन में लुटे पथिक-सी, विकल कलम गति-हीन हुई,
इष्ट लाभ की आशा की अन्तिम रेखा भी क्षीण हुई ॥६॥
ठिठक गईं कम्पित अँगुलियाँ, थक बैठा सहचर उत्साह,
अब न प्रेरणा और उमंगें दिखलातीं आगे की राह!
लोभ मोह से लाभ? हमें माया-ममता से अब क्या काम?
चलो, लगा दें, प्रिये, अधूरे ही आशय पर पूर्ण विराम ॥७॥
अगणित जीवन-गाथाएँ जिस पर लिख हारे गुणी अनन्त,
किन्तु न अब तक आदि काल से मिला किसी को जिसका अन्त,
उस अनन्त पट के चरणों में करलें अन्तिम बार प्रणाम,
और असील नील अम्बर की छाया में क्षण भर विश्राम ॥८॥
फिर, आगे न सही पीछे ही, मुड़कर एक दृष्टि लें डाल,
और क्षितिज पर आहों से लिख छोड़ें गत जीवन का हाल,
अमर रहे त्रुटियों का लेखा, यह अपूर्णता का इतिहास,
गूँजे सदा वायु मण्डल में यह पछतावा, यह उच्छ्वास ॥९॥
सुनें महामानव भविष्य के यह अतीत की वाणी क्षीण,
जब आरम्भ किया चाहें इस पट पर जीवन-लेख नवीन,

"स्वागत, नवयुवको ! जीवन की क्रान्ति, विश्व के नव मधुमास
काटो जीर्ण जरा के बन्धन, भरदो वसुधा में उल्लास ॥१०॥
हमें कुचल कर बढ़ो, किन्तु उस बढ़ने पर मत फूलो तुम,
हमें भूल जाओ, पर, त्रुटियों को न हमारी भूलो तुम,
उनसे कुछ ले पूर्ण बनो तुम, प्यारो, युगनिर्माण करो,
मानवता के चरम लक्ष्य का प्रतिक्षण अनुसन्धान करो ॥११॥
है अशेष यात्रा-पथ यह जग, प्रतिक्षण यहाँ कर्म अविराम,
जीवन का एक अनन्त लेख है, गति ही है जिसका विश्राम,
हे चिर-जाग्रत ! उर में अंकित कर रखना यह अमर विचार,
'अपनी सीमा के बाहर भी उस विराट का है विस्तार ॥१२॥
ओछे अक्षर तुम्हें न अपनी माया में लें भुला अजान,
इस पट की निस्सीम परिधि पर रहे तुम्हारा प्रतिपल ध्यान,
खेल-खेल में कहीं बीच ही में हो जाय न अवधि तमाम,
रहे अधूरा ही आशय, सहसा आ पहुँचे पूर्ण विराम ! ॥१३॥



हरिकृष्ण प्रेमी

इन का जन्म गुना रियासत ग्वालियर में हुआ था। आज कल लाहौर में रहते हैं। हिन्दी के छायावादी कवियों में ये महत्व पूर्ण स्थान रखते हैं। इनकी रचनाओं का मुख्य विषय करुण रस है। इनके प्रत्येक पद से निराशा, वेदना तथा व्याकुलता की झलक दीख पड़ती है। इसका संभवतः कारण हैं, कवि के अपने जीवन की परिस्थियां। 'आंखों में' 'जादूगरनी' तथा 'अनन्त के पथ पर' नाम की इनकी रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके काव्य की सब से अधिक विशेषता है इनकी भाषा की अत्यन्त सरलता। कवि के अतिरिक्त ये नाटक कार भी हैं इनके रक्षा बन्धन, शिवासाधना तथा पाताल विजय नामक नाटक निकल चुके हैं।



रवि

वह रवि कहता है "पगली
इसका है कहाँ किनारा" ?
इस 'उदय अस्त' में मेरा
बीता है जीवन सारा ।
मैं उठता गिरता फिरता
इस पथ में मारा-मारा,
पर फल न मिला है कुछ भी,
हो भी कुछ 'कूल किनारा !'
"मैं" नित्य जहाँ से चलता
आ जाता वहीं 'सवेरे' ।
ऐसे ही व्यर्थ गगन में
देता रहता हूँ फेरे ।
"पा जाता पार क्षितिज का
पर पुनः क्षितिज आ जाता ।
'अवसान' जिसे कहते हैं
है वही 'उदय' कहलाता ।

"जिसके 'वियोग' की मेरे
प्राणों में जलती ज्वाला,
क्या जग में जनमा कोई
उसका 'पथ' पाने वाला ।
जब 'एकाकार' बनेंगे
घुल-मिल-कर 'साँझ सवेरे,
जिस दिवस शांत होगी यह
'ज्वाला' अन्तर की मेरे,
"जब होगा शून्य जगत सब
अपना अस्तित्व मिटाकर,
तब अपने आप मिलेंगे
सब उस 'अनंत' में जाकर।
"है वही 'मुक्त' कर सकता
जिसने जग-जाल बिछाया ।
यह वही मिटा सकता है
जिसने यह खेल बनाया ।
'जिसकी इच्छा की विस्तृत
सागर भी, एक लहर है,
उस छवि के दर्शन पाने
लोचन पाना दुस्तर है ।
"कितना ही ऊँचा कोई
चढ़ जाए इस अंबर में ।

वह उसे गिरा देता है
अवनी पर फिर पल भर में ।
"कितनी नौकाएँ निशि-दिन
'सागर' पर बहती-रहतीं,
उनसे 'विनाश' की गाथा
आ आकर लहरें कहतीं ।
"तू अपनी जर्जर 'नौका'
क्यों खेती व्यर्थ अकेली,
जब सुलझाने वाला ही
है अंत 'अनंत' पहेली" ।



शब्दार्थ

कबीरदास

पृष्ठ १३

पद्य

१ कर=हाथ

२ सोहंगम=सोऽहम्-अद्वैत ज्ञान
अनहद=समाधि की अवस्था में योगियों को भीतर से सुनाई देने वाली आवाज़।

३ केरा=का

४ चबेना=भोजन, खाद्यपदार्थ

पृष्ठ १४

८ औसर जासी चाल—समय व्यतीत हो जाता है।

१० बहुरी=फिर, बार बार

११ पट्टन=सं० पत्तन, गाँव

१३ मेडियां=मंडप, मढ़ी

पृष्ठ १५

१८ ऐंठ=अकड़
पैंठ=मंडी, बाज़ार, बाज़ार का दिन।

२० गाडर की ठाट=भेड़चाल।
गाड़=गढ़ा

२२ नारी=नाड़ी, अथवा स्त्री।

पृष्ठ १६

३१ तिरिया=स्त्री।
पीहर=पिता के घर।

३३ बिसूरना=मन में दुखी होना

३४ दुहागिनि=विधवा,

३७ हवस=उत्कट इच्छा।
पदामिनी=स्त्री।
उछंग=गोद।

३८ ओदी=गीली।
सपचे=सुलगे।
सिगरो=समस्त, सारा,।

३९ चकमक=एक प्रकार का पत्थर
पावक=आग।
चहुटा=लगना।

पृष्ठ १७

४० विदेह=निराकार ब्रह्म।
मुल्तान=बादशाह।

४३ बेदन=वेदना, पीड़ा।

४४ निर्मई=पैदा की।

४५ आब=आबरु, सम्मान।

४८ चीन्है=पहचाने।
भीना=मस्त।
सांकरी=तंग, छोटी।

पृष्ठ १८

बौरी=पागल।
छिया=निकम्मी अथवा घृणा के योग्य वस्तु।

सहसमुख=शेषनाग ।

संघाती=साथी ।

पृष्ठ १९

उद्र=गर्भ, पेट ।

चोखा=शुद्ध ।

तमक के=क्रोध कर गर्व से ।

पिराने=पीड़ा का अनुभव करने ।

बास=बू, दुर्गन्ध ।

पृष्ठ २०

जूझना=लड़ना ।

सुरति=भगवान का स्मरण

तुलसीदास

पृष्ठ २३

बीच=अन्तर, फरक, भेद, ।

सरिस=सदृश ।

अधमाई=नीचता ।

निगम=वेदशास्त्र ।

मुदित=प्रसन्न ।

पानक=पाप ।

पृष्ठ २४

बैन=बचन, आज्ञा ।

अमरपाति ऐन=स्वर्ग ।

अछत=होते हुए ।

तरु=वृक्ष ।

बुध सेवकाई=विद्वानों की सेवा ।

परस=स्पर्श ।

समीरा=पवन ।

द्रवहिं न=नहीं पिघलते, कृपा नहीं करते ।

पृष्ठ २५

भव=जन्ममरण, संसार ।

विंदक=प्राप्त करने वाले ।

अघ=पाप ।

कोविद=चतुर ।

परिहरिय=त्याग दीजिए ।

स्वान=कुत्ता ।

बिरंची=ब्रह्मा ।

बायस=कौआ ।

निरामिष=मांस न खाने वाला

विसद=निर्मल ।

गुणमय=गुणों से युक्त, अथवा धागा देने वाला ।

पृष्ठ २६

पराहीं=भाग जाते हैं ।

कदली=केला ।

खगेस=गरुड़ (सम्बोधन) ।

प्रभुता=विभव, ऐश्वर्य ।

बारि=जल ।

सुधा=अमृत ।

कृषी=खेती ।

पृष्ठ २७

पय=दूध ।

गालव=एक ऋषि का नाम

नहुष=एक राजा ।

पृष्ठ २८

पान=मदिरा पीना।

लाजा=लज्जा।

पृष्ठ २६

विरति=वैराग्य।

कौल=शराबी।

तनपोषक=अपना ही पेट पालने वाला, स्वार्थी।

अघखानी=पापों की खान।

शव=लाश, मुर्दा।

राकापति=चन्द्रमा।

दव=वन की आग।

जोइ=स्त्री, पत्नी।

पृष्ठ ३०

पद्य ७ गाडर=भेड़।

८ अन्तर=भेद।

पृष्ठ ३१

पद्य १४ स्वाती=स्वाती नक्षत्र में गिरा हुआ जल।

१६ खताखाना=हानि उठाना, धोखा खाना।

बूड़ना=डूबना।

१८ असन=भोजनादि।

२१ पहारू=पहाड़ा, पहाड़।

२२ पाहन=पत्थर।

पृष्ठ ३२

पद्य ३१ सांसति=कठिनाई, विपत्ति, कष्ट।

असम=विषम, विकट।

अनट=अत्याचार, अनीति।

३४ मनोज=कामदेव।

पृष्ठ ३३

जीह=जिह्वा।

नांधिगए=ऊपर से कूद गए

सूरदास

पृष्ठ ३६

पद्य १ अबिगत=जो भलीप्रकार जाना न जासके, परमात्मा।

अगम=पहुँच से बाहर।

चकृत=चकित।

पद्य २ औगुन=अवगुण-अपराध।

रवि-सुत-त्रास=यमराज का भय।

मासि=स्याही।

सुरतरु=कल्पवृक्ष।

जग्य=यज्ञ।

भाख्यो=उच्चारण किया, पाठ किया।

स्वान=कुत्ता।

अनतै=अन्यत्र, दूसरे स्थान अथवा पदार्थ में।

पृष्ठ ३७

विषै=विषय, सांसारिक भोगाविलास।

अघमोचन=पापों को दूर करने वाले।

सर्वग्य=सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला ।

बूड़त है=डूबता है ।

पद्य ३ बडेपतित पासंगहु नाहीं=बड़े-बड़े पतित भी मेरी अपेक्षा अच्छे हैं, उनके पाप मेरे पापों से बहुत कम हैं ।

अजमिल=एक पापी ब्राह्मण जिसने मरते समय अपने पुत्र नारायण का स्मरण कर मोक्ष प्राप्त किया था ।

जमनि=यमराज ।

तारो=तारना ।

जारो=गर्व, अभिमान ।

पद्य ४ खनावै=खोदे ।

छेरी=बकरी ।

पृष्ठ ३८

पद्य १ मग जोवति=मार्ग की प्रतीक्षा करती ।

पावसऋतु=वर्षाऋतु ।

पद्य २ अवराधै=आराधना करे, पूजा करे ।

बरीस=वर्ष ।

बतियां=बातें ।

पुरवौ=पूरा करो ।

बारक=बालक, कृष्ण ।

पतूखी=दोना ।

पृष्ठ ३९

अघात=तृप्त होना, प्रसन्न होना

मीरा

पृष्ठ ४२

घणो उमावो=घना अर्थात् बड़ा उत्सव ।

फांसाड़ियां=बन्धन ।

आरत=दुःखित ।

आटडियां=संकोच, आना-कानी ।

खेवटिया=नाव खेने वाला, मल्लाह ।

पृष्ठ ४३

बैजन्तीमाला=मोतियों अथवा वनपुष्पों का हार ।

भक्तवछ्ल=भक्तवत्सल, भक्त-प्रिय ।

सुरत=भगवत्स्मरण, भगवान् के नाम का जाप ।

रहीम

पृष्ठ ४६

१ दुरै=छिपे ।

जरु=जल रहे ।

२ सुचहिं=संचित करते हैं ।

४ बहुरि=फिर, पीछे, बारबार ।

६ वित=वित्त, धन ।

पृष्ठ ४७

८ धौं=तक ।

९ मनसा=इच्छा, स्पृहा ।
११ अथवत=अस्त होता है ।
१२ ठौर=स्थान ।
१४ दीबो=दान देने की सामर्थ्य
१८ कंज=कमल ।
अंत=अन्यत्र, दूसरे स्थान ।

पृष्ठ ४८
२१ कानि=मर्यादा ।
सहिजन=सेंजना का वृक्ष ।
२३ बिहाय=व्यतीत हो गयी ।
२६ नखत=नक्षत्र ।
२८ मधुकरी=भिक्षा ।

पृष्ठ ४९
३३ मुनिपत्नी=अहल्या, गौतम की स्त्री ।

बिहारी

पृष्ठ ५२
झांईं=छाया ।
दुराज=दो अमली, एक ही राज्य में दो आधिकारियों का प्रभुत्व, अथवा अधिकार ।
द्वन्द=झगड़ा-कलह ।
मूर=समूल जड़ से ।
पीनसवारा=नाक का रोगी, जिस की सूंघने की शक्ति क्षीण हो गयी हो ।

पृष्ठ ५३
बिरद=यश ।
कनक=धतूरा, सोना ।
कहलाने=व्याकुल हुए २ ।
निदाघ=ग्रीष्म ऋतु ।
बीच=अन्तर ।
सुआ=तोता ।
वायस=कौआ ।

भूषण

पृष्ठ ५६
पद्य १
दावा=स्वत्व, अधिकार ।
नाग=सर्प, हाथी ।
जूह=यूथ, झुण्ड, समूह ।
पुरहूत=इन्द्र ।
गोल=समूह ।
तम=अन्धकार ।

पद्य २
जम्म=एक जम्भासुर दैत्य, ।
बाडव=वडवानल ।
बारिवाह=बादल ।
रतिनाह=कामदेव ।
सहस्त्रबाह=एक प्राचीन राजा
राम-द्विजराज=परशुराम ।
वितुण्ड=हाथी ।
मृगराज=सिंह ।

पृष्ठ ५७
पद्य ३ चतुरंग=सेना के चार अंग, हाथी, घोड़े, रथ पैदल ।
बिहद=बेहद, अत्यधिक ।
गैयरन=गजराज, हाथी

रलत हैं=मिलते हैं ।
ऐल-फैल=अत्यधिक विस्तार
खैल-भैल=कोलाहल, शोर।
खलक=संसार, दुनियां ।
गैल-गैल=स्थान स्थान पर, गली गली में ।
तरनि=सूर्य ।
पारावार=समुद्र ।

पद्य ४ नाहन=पति-नाथ ।
अरविन्द=कमल ।
तरनि तनुजा=यमुना ।
कालिन्द=वह पर्वत जहां से यमुना निकलती है ।

पद्य ५ मंदर=महल, गुहा, कंदरा ।

पृष्ठ ५८ कंदमूल=जड़ें ।
बेर=वार, एक फल ।
भूषण=अलंकार ।
विजन डुलातीं=पंखा करती, निर्जन में व्याकुल फिरती थी
नगन जडाती=भूषणों में नग जड़वातीं अथवा नंगे ही जाड़ा काटती हैं ।

पृष्ठ ५८

अस्मृति=स्मृति शास्त्र ।
समसेर=तलवार ।
दिवाल=मर्यादा ।
दुनी=दुनिया, संसार ।

वृन्द

पृष्ठ ६०

तूठे=सन्तुष्ट हो ।
वनदव=जंगल की आग ।
नलिन=कमल ।
हिम=बरफ़ ।
मनुहारि=आदर सत्कार ।
अचल=पर्वत ।
झकोर डारती=हिलादेती ।

पृष्ठ ६१

उदोत=उदय होती है ।
जोति=सम्मान, इज्ज़त ।
कलुषता=मलिनता ।
परसि=स्पर्शकर, छूकर ।
कनक=सोना ।
चुंबक=चमक पत्थर, मिकना तीस ।
रीति=खाली ।
बिरानो=बिगाना, पराया ।
निदान=अन्त परिणाम ।
भान=सूर्य ।
रसरी=रस्सी ।
करी=बनाई, हाथी ।
भुजंग=साँप ।

पृष्ठ ६२

कर=सूंड,हाथ ।
छीर=दूध ।
दोय=दो, अलग ।

उनयो=उठता हुआ।

पयोद=बादल।

अपावन=अपवित्र।

भौन=निवास, स्थान,

अयान=अज्ञान।

बिहान=प्रातः, सवेरा।

गुर=गुड़।

नेक=तनिक।

डम्बर=दिखावा।

वारू=रेन, बालू।

पृष्ठ ६३

भीति=दीवार।

बिरवान=पौधा।

जनि पतियाय=विश्वास न करो।

सुरभि=वसन्त ऋतु।

कंचन=सोना।

खल=दुष्ट।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृष्ठ ६६

छहरति=शोभा देती।

पोहनि=पिरोनी।

लोल=चञ्चल।

सुभग=सुन्दर।

सोपान=सीढ़ी।

मज्जन=स्नान।

त्रिविधभय=तीन प्रकार का।

भय=आधि भौतिक।

आध्यात्मिक=अधिदैविक।

सुर=सरबस-देवताओं का सर्वस्व।

भगीरथ नृपति पुण्यफल=स्वर्ग से गङ्गा को लाने का श्रेय राजा भगीरथ को ही है इसी लिए गङ्गा को भगीरथ नृपति पुण्य फल कहा गया है।

ऐरावत=इन्द्र का हाथी।

हिमनग=हिमालय।

कल=सुन्दर।

अंकम=गोदी।

छतरी=मंडप।

पृष्ठ ६७

करि साका=मंगलोच्चार।

घहरत=शब्द करते हैं।

मधुरी नौबत=मधुर नगाड़ा।

अम्बुज=कमल।

बारिधि नाने=चन्द्रमा क्षीर-सागर से उत्पन्न हुआ था और कमल की उत्पत्ति भी जल से ही होती है अतएव दोनों का परस्पर संबन्ध जतलाया गया है।

दीठि=दृष्टि, नज़र।

बिदेस=परदेश।

महासर=तीखा तीर ।

थर=स्थान ।

पृष्ठ ६८

बैस=आयु ।

चेति=होश कर ।

बिनसाई=नष्ट हुई ।

अबलौं=अब तक ।

आरज=आर्य लोग ।

सहसाज=सहायकों के साथ, सपरिवार ।

श्रीधर पाठक

पृष्ठ ७०

मुकुरन=दर्पण ।

अमरन=देवता ।

ओक=निवासस्थान ।

पुरन्दर=इन्द्र ।

पृष्ठ ७१

विहंगन=पक्षिसमूह ।

बावरौ=पागल ।

अलि=भ्रमर ।

सुघराई=सौष्टव ।

सोते=स्रोत, चश्मे, झरने ।

रजनी=रात्रि ।

नाथूराम शङ्कर

पृष्ठ ७४

रंकरोदन=निर्धन का विलाप

कर्पूर न होगा=शान्त न होगा

पृष्ठ ७५

मुखिया=अग्रणी ।

परमाधार=आश्रय ।

निरंकुश=उच्छृंखल ।

होड़=स्पर्धा ।

आराम=बाग़ीचे ।

निरुपाधि=खिताबों से रहित

पृष्ठ ७६

दुर्वाद=गाली ।

विज्ञ=विद्वान् ।

विख्यात विरद=प्रसिद्ध कीर्ति यश, नाम ।

मग=मार्ग रास्ता ।

प्रतिवाद=विरोध, विवाद

लताड़ चुका है = परास्त अथवा क्षीण कर चुका है ।

पृष्ठ ७७

ह्रास=क्षीन-क्षीणताअदम्य= बेक़ाबू, सबल ।

फूल फूल कर=प्रसन्नता से गर्व से ।

व्यञ्जन=खाद्य पदार्थ ।

पाक प्रसादी=बड़ों से प्रसन्न होकर छोटों को दिया गया पका हुआ भोजन ।

रसाला=रसीला, स्वादिष्ट ।

पृष्ठ ७८

बीन बीन कर=चुन चुनकर ।

प्रतियोग=इलाज ।

प्रतिकार=प्रतियोग ।

केहरिनाद=सिंहनाद, सिंह की तरह गरजना।

विद्युद्=बिजली।

त्राण की टांग तोड़ रहे हैं=रक्षा के एक मात्र साधन को नष्ट कर रहे हैं।

पृष्ठ ७६

डांस=बनमच्छर।

रुद्ररुप उपवास=भयंकर व्रत, अनशन।

ईशस्वामी=ईसा मसीह।

पृष्ठ ८०

जगती=संसार।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पृष्ठ ८३

लख कर=देखकर।

पन्थ=मार्ग।

नवनलिनी=नया कमल।

सजलजलद=पानी से भरा हुआ बादल।

कुअङ्कों की=बुरे शकुनों की।

पृष्ठ ८३

किसलय=पत्ता।

रव=शब्द।

स्वर्ग मंदाकिनी=स्वर्ग की गङ्गा।

निराशायामिनी=निराशा रूपी अन्धकार।

खनि=खान।

समुद्विग्न=व्याकुल।

समाकीर्ण=भरा हुआ।

ध्वसंकारी=नाश करने वाला

पृष्ठ ८४

निर्जरों को=देवताओं को।

वसन=कपड़े

मूंड=सिर।

लार टपकाना=लालच करना, किसी वस्तु को देख कर उसे प्राप्त करने की उत्कट इच्छा करना।

पृष्ठ ८५

जीविका=गुज़ारा।

बखाने=वर्णन करे।

थोथी=सारहीन।

मूछें टेवे=मूछों पर ताव दे। इतराए, गर्व करे।

पृष्ठ ८६

बारि बिलोवे=पानी को मथे

नेता=लीडर।

तत=तत्व, सार।

मैथिलीशरण गुप्त

पृष्ठ ८८

अवलम्ब=आश्रय-सहारा।

रज=धूली।

परमहंस-सम=सिद्ध योगियों की भाँति।

पृष्ठ ८९

वक्षस्थल=छाती ।
अभ्रंकष प्रासाद=आकाश चूमने वाले ऊंचे महल ।

पृष्ठ ९०

सनी हुई=भरी हुई ।
व्याप्त हो रहा=फैलरहा ।
श्रम=थकान, थकावट ।

पृष्ठ ९१

शुचि=पवित्र ।
तरणि=सूर्य ।
सुरभित=सुगन्ध वाले ।
सुधोपम=अमृत के समान ।
वसुधा=रत्नादि धन को धारण करने वाली ।
धरा=धारण करने वाली आश्रय देने वाली, पृथ्वी
शैलश्रेणि=पर्वतों की श्रेणी ।
घनावली=बादलों की घटा ।
पखारना=धोना ।
चेरी=नौकरानी ।
तरुराजि=वृक्षों की पङ्क्ति ।

पृष्ठ ९२

सात्विकभाव=सतोगुणीभाव
वात्सल्यमयी=स्नेहमयी, प्रेम करने वाली ।
विभशालिनी=ऐश्वर्य वाली ।
विश्वपालिनी=संसार की रक्षा करने वाली ।
दुःखहर्त्री=दुखों को दूर करने वाला ।
त्राण=रक्षा ।

जयशङ्करप्रसाद

पृष्ठ ९४

अनुराग=प्रेम, लाली ।
सरसिज=कमल ।
पराग=पुष्प-धूलि ।

पृष्ठ ९५

कोकनद=लाल कमल ।
विरज=रोग रहित ।
विशोक=शोक रहित ।
सुदिन मणिवलय=सूर्यरूपी कङ्कण ।
निकेत=स्थान ।

पृष्ठ ९६

प्रमाता=जानने वाला, कर्ता, साक्षी ।
रत्नाकर=समुद्र ।
यक्ष=देवता विशेष ।

वियोगीहरि

पृष्ठ ९८

पेंड=पाँव, कदम ।
मेंड=रणक्षेत्र की सीमा ।
घालक=मारने वाला ।
करवाल=तलवार ।

कलमाल=सुन्दर माला।

कादर=कायर।

माखनलाल चतुर्वेदी

पृष्ठ १००

मधुरालाप=मधुर संभाषण।

पृष्ठ १०१

धीमान्=बुद्धिमान्।

हैट, नेक्टाय=अंग्रेज़ी शब्द हैं

डेली=अंग्रेज़ी शब्द, प्रतिदिन

पृष्ठ १०२

शिल्प=दस्तकारी।

कृषि=खेती।

घृणा=नफरत।

पार्थपुत्र=अर्जुन।

रामनरेश त्रिपाठी

पृष्ठ १०४

कर्म-निरत=कर्म में लगे हुए

आतप=धूप।

वसुधा=पृथ्वी।

भूमि-अण्ड=पृथ्वी, संसार

जीवन=जल, ज़िंदगी।

सुधा=अमृत।

पृष्ठ १०५

अमित=अत्याधिक।

उदर-दरी=पेट रूपी गुहा।

मही=पृथ्वी।

बाधाओं=रुकावटों, अड़चनों

पृष्ठ १०६

प्रतिभा=बुद्धि।

पर-पालन क्षमता=दूसरों की रक्षा की सामर्थ्य।

मनस्विता=बुद्धिमत्ता, धैर्य

मेधा=बुद्धि।

वितरण करना=बांटना।

ठाकुर गोपालशरणसिंह

पृष्ठ १०८

आख्यान=कहानी।

पृष्ठ १०९

अवनी=पृथ्वी।

ऋतुपति=वसन्त।

बयार=पवन।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

पृष्ठ ११२

भाव में लीन=विचारों में तल्लीन हुई हुई।

पृष्ठ ११३

चितवन=दृष्टि।

छोर=किनारा।

सुमित्रानन्दन पन्त

पृष्ठ ११६

म्लान=मुरझाए हुए।

पृष्ठ ११७

अलि=सखी।

विजन विपिन=ऊजड़ वन।

महादेवी वर्मा

पृष्ठ १२०

अविराम=निरन्तर।

व्रीड़ा=लज्जा ।

रामकुमार वर्मा

पृष्ठ १२२

कांच के टुकड़े=तारों से अभिप्राय है ।

पृष्ठ १२३

शशी=चन्द्रमा ।

नभ=आकाश ।

व्याल=सांप ।

अनिल=वायु ।

उदयशंकर भट्ट

पृष्ठ १२६

विषाद=शोक ।

तंत्री=सितार ।

पृष्ठ १२७

शैवाल=पानी का जाला ।

सागरिका=समुद्र ।

निठुर=निर्दय ।

पृष्ठ १२८

सौरभ=सुगन्ध ।

अनुभव=अनुभूति, तजुर्बा ।

लव=थोड़ी-सी मात्रा ।

अहंवाद=अहंभाव, मेरा अस्तित्व ।

सियारामशरण गुप्त

पृष्ठ १३०

अतल=पाताल ।

क्षिति=पृथ्वी ।

सरसावें=हराभरा कर दें ।

पृष्ठ १३१

पराभव=निरादर ।

जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

पृष्ठ १३४

अवसान=समाप्ति ।

श्रेयस्कर=कल्याणकारी ।

पृष्ठ १३५

संबल=सामग्री, पाथेय ।

कलम=टहनी ।

पृष्ठ १३६

उल्लास=आनन्द ।

चरमलक्ष्य=अन्तिम, उच्च-लक्ष्य ।

अनुसन्धान=खोज ।

परिधि=घेरा, मण्डल, सीमा

पूर्णविराम=अन्तिम समय

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पृष्ठ १३८

अवसान=अन्त ।

कूल=किनारा ।

पृष्ठ १३९

अस्तित्व=हस्ती ।

दुस्तर=कठिन ।
